मानव मन्दिर

10/1993

27-10-93

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Ravi Nanda hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Ravi Nanda at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 26-10-93 को होगा।

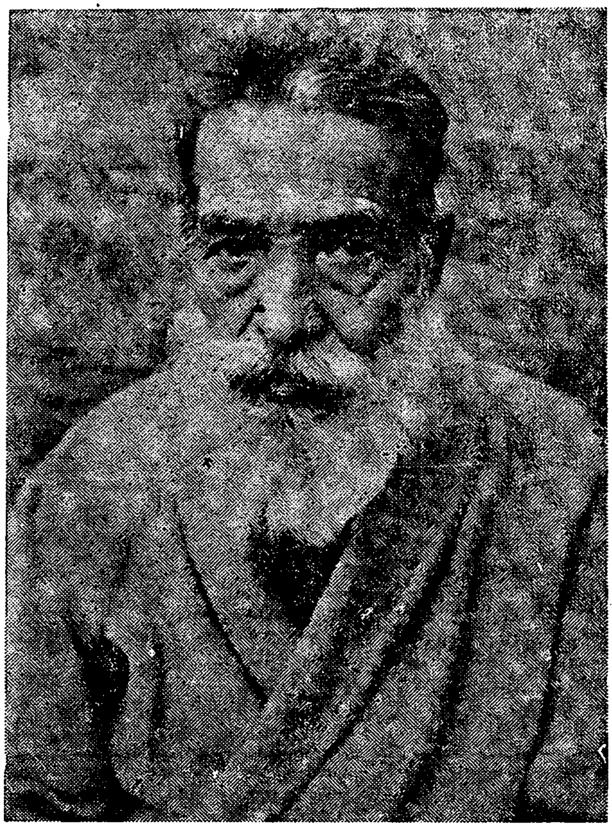

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

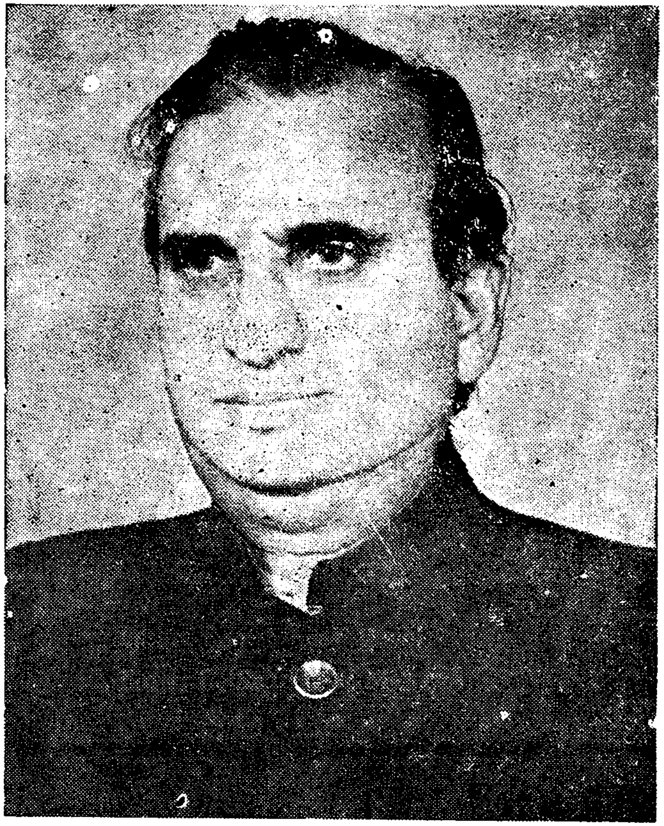

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
श्री रवि नन्दा

वर्ष 20	रविवार 10 अक्तूबर, 1993	संख्या 6

PURNADAYAL

आत्म भण्डार

परमसन्त दाता दयाल महर्षि
शिव ब्रत लाल जी महाराज

उलट सामना आप में,
प्रगटी जोत अनन्त ।
साहब सेवक एक संग,
खेलें सदा वसन्त ॥
संशय वारूं न मैं डरूं,
सब दु:ख दिए निवार ।
सहज सुन्न में घर किया,
पाया नाम आधार ।
विन पावन का पन्थ है,
बिन बस्ती का देश ।
बिन देह का पुरुष है,
कहैं कबीर संदेस ॥

(कबीर साहब)

आज तक जो कहा गया है, वह सबल ब्रह्म के शासन-धिकार को दृष्टि से कहा गया है। इसी में विराट है,

इसी में हिरण्यगर्भ है, इसी में सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती का भण्डार है। आगे जो कुछ कहा जायेगा, वह शुद्ध ब्रह्म है। यह वर्णन करने में नहीं आता। इन्द्रियों और मन की इस तक गम नहीं है। यह केवल अनुभवमात्र से ही कुछ अनुभव किया जाता है, परन्तु इसके विषय में यह कहना कि वह हमारे अनुभव में आता है, निरर्थक है।

तुमने चार भण्डार की विचित्र व विलक्षण सामग्री देखी। इनसे विचित्र और क्या वस्तु हो सकती है? सबसे विचित्र तथा आश्चर्य की बात तो यह है कि ये सब भण्डार तुम्हारे तीन हाथ के इसी शरीर में ही विद्यमान हैं। जो ब्रह्माण्ड में है व ो पिण्ड में भी है। इसलिए तुमको विश्वास कर लेना चाहिए कि तुम्हारे अपने शरीर में ही सब कुछ है। बाहर कहीं कुछ खोजने की आवश्यकता नहीं। हां केवल इतनी आवश्यकता जरूर है कि तुम परिश्रम से काम करते जाओ, अपनी दबी हुई शक्तियों को उत्तेजित करो, मन को उभारो, विचार को क्रियात्मक क्षेत्र में लाओ। सब कुछ तुम्हारा हो जायेगा। तुम अपने भीतर दबे हुए खज़ाने को नहीं जानते, इसीलिए हो तुम दरिद्री और कंगाल हो। जैसे कि किसी राजा के पुत्र के घर बहुत धन पड़ा है, किन्तु यदि मूर्खता और अज्ञान के कारण वह विपत्तियों का लक्ष्य बना रहे तो दोष किसका है? वही हालत तुम्हारी है। जिसके भीतर गंगा जमुना सरस्वती लहरें मारती हों, यदि वह भी प्यासा रहे तो दोष किसका है? तुम्हारी स्थिति तो वास्तव में, इस प्रकार है, जिसके भीतर अमृतधार बह रही है और फिर भी उसको ज़िन्दगी के लाले पड़े हों। अविद्या और

अज्ञान ने, इस प्रकार तुम्हें दबोच रखा है कि तुम अपनी असलियत को भूल ही गए हो। तुमको अपने निज आत्म भण्डार का ज्ञान ही नहीं है। तुम यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे भीतर क्या - 2 अमूल्य पदार्थ मौजूद हैं।

हमने आपको कई बार यह कहा है कि राम और कृष्ण सरीखे पवित्र व्यक्तित्व के उत्पन्न करने वाले आप ही हों। आपकी शक्ति का पारावारा नहीं, तुम्हारे बल की थाह नहीं, परन्तु शर्त यह है कि तुम इसको समझो, बूझो, जानो और इससे काम ले सको।

जिस समय संसार में अन्याय तथा दुराचार का बोलबाला हो जाता है और अधिक से अधिक लोग कष्टों से पीड़ित हो जाते हैं, तो उनके हृदय में यह विचार आता है कि उनके बीच कोई महान शक्ति जन्म ले कर, उनको इन कष्टों से शक्ति दिलाए। पहले इस विचार की लहर थोड़े ही आदमियों के मन में उत्पन्न होती है, फिर वह हमारे इर्द-गिर्द के आकाश मण्डल में फैल जाती है और दूसरे बहुत से लोगों पर प्रभाव डालती है। क्योंछि विचार की धारें जहां जहां समान विचार और अनुकूल प्रकृति पावेंगी, वह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह पायेंगी। यह प्राकृतिक नियम है। यदि किसी सितार में ऊपर नीचे दो परदे हों और स्वर मिलाने के बाद, यदि ऊपर के तारों को छेड़ दिया जाए, तो नीचे के तार स्वयं ही बजने लगेंगे। तुमको आश्चय होगा कि माजरा क्या है कि केवल जब एक ही परदे के तार छेड़े गए, सब के सब कैसे बजने लगे। इसका कारण यह है कि तारों में पारस्परिक सम्बन्ध अनुकूलता और समानता है,

इसलिए एक के बजने से सब बज उठते हैं। इसी प्रकार, जब किसी एक महान पुरुष में किसी विशेष भाव का विचार दृढ़ हो जाता हैं, तो वह अपने समीपवर्ती अनुकूल और समान प्रकृति वालों को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। बजाया तो था ऊपर का तार बजने लगे नीचे के तार भी और तीव्र स्वर से शब्द होने लगा। इसी प्रकार, केवल एक के प्रभावित होने से, सब प्रभावित हो जाते हैं और विचार की संगठित धार दृढ़ हो कर एक ऐसे केन्द्र की ओर आकर्षित होती है, जहां इस विचार के क्रियात्मक रूप धारण करने की सामग्री पहले से ही विद्यमान थी। तुम नहीं जानते कि यह नियम किस तरह काम करता है, परन्तु यह वास्तविकता हैं। सम्भव है कि जिस प्रकार के उदार दानी की आवश्यकता किसी विशेष गोलार्ध में लोग अनुभव करते हों, परन्तु वह उसमें विद्यमान नहीं है, फिर भी यदि इस प्रकार का कोई शक्तिशाली प्राणी किसी और लोक जैसे चन्द्रलोक सूर्यलोक इत्यादि में विद्यमान है, तो हमारे विचार जाकर उसके हृदय को स्पर्श करेंगे और वह हमारे पास आने का इच्छुक होगा और हमारे इर्दगिर्द जन्म लेकर हमारी मुक्ति की सामग्री एकत्र कर देगा। यह नियम किस प्रकार अपना काम करता है, इसकी व्याख्या करने की यहां ज़रूरत नहीं हैं, परन्तु यह असलियत है कि हमारे विचार, इस महान पुरुष को हम में उत्पन्न कर देते हैं। यह केवल आवश्यकता का प्रश्न है और तुम भूलकर भी यह विचार न करो कि यह प्रकृति आवश्यकता की सामग्री उत्पन्न करने में भूल करेगी। "डिमाण्ड तथा सपलाई" का सिद्धान्त निरर्थक नहीं रहता। यह मानुषिक वृत्तियों का सदैव अध्ययन करता रहता हैं। भीष्म पितामह ने इसी कारण युधिष्ठिर से बराबर कहा था,

"हे धर्मराज ! तुम कभी दुखियों को न सताना। इनकी आह बुरी होती है।"

मोटी आह गरीब की,
हरि सों सही न जाय।

यह डिमाण्ड एन्ड सपलाई का प्रश्न हैं, नियम है। यह सृष्टि ईश्वर की है, जब और जिस समय जैसी-2 मनुष्य की आवश्यकतायें होंगी वैसा-2 काम हुआ करेगा। प्राकृतिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक वस्तु के भण्डार हुआ करते हैं और इन्हीं भण्डारों द्वारा बांट की जाती है। जैसे सूर्य गर्मी का भण्डार है, गर्मी और सर्दी इससे ही बंटती है। चन्द्रमा शीतलता और जीवन का भण्डार है, शीतलता और जीवन चन्द्रमा के द्वारा ही प्राप्त होता है। यही दशा अग्नि और जल के भण्डारों की है। शाही खज़ाना भण्डार है रुपये पैसे का, जिससे रुपया पैसा बंटता रहता है। राजसी सेना भण्डार है शक्ति और बल का, जिससे आवश्यकता के अनुसार शक्ति बंटती रहती है। पाठशालायें, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय भण्डार हैं विद्या व कला कौशल के। इनके द्वारा विद्या बुद्धि वाले अन्य स्थानों पर भेजे जाते हैं। इसी प्रकार, यह भण्डार का सिद्धान्त प्रत्येक स्थान पर दृष्टिगोचर होता है।

तुम्हारे शरीर में भी प्रत्येक स्थान पर, इसी प्रकार के अनेकों भण्डार है। हाथ शक्ति का भण्डार है, दिमाग़ योग्यता और विचार का भण्डार है, इत्यादि-2 जब तुमको आवश्यकता होती है तुम स्वयं ही अपनी इच्छामात्र

से अपने मन की ताकत से अपनी आवश्यक सामग्री ले आते हो। यह एक गूढ़ रहस्य है, जो हल नहीं होता, परन्तु जिसके हल करने की आवश्यकता है। चित्त स्वयं मस्तिष्क की ओर आकर्षित होता है और वहां से विशेष प्रकार की शक्ति ले कर, इसको हल कर देता है। तुम्हारा यह शरीर चूंकि छोटा ब्रह्माण्ड है, इसलिए बड़े ब्रह्माण्ड के सारे भण्डार इसमें विद्यमान हैं।

बड़े ब्रह्माण्ड में सूर्य की गर्मी का और बिजली का चुम्बक समान आकर्षण का भण्डार है। इसमें प्रकाश है। इसकी उपमा हमारे नेत्रों से दी जा सकती है। हम जिसको चाहें, आँख भर देख लेने से गर्मी व उष्णता दे सकते हैं। उसमें उत्साह और साहस की भावनायें उत्तेजित कर सकते हैं, कुदृष्टि की बिजली से जिसे चाहें मार दें। आंखे लड़ा कर उसको अपनी ओर खींच लें। चन्द्र भण्डार है अमृत का, शीतलता का, मादा का, जिसमें अमृत है। इसका सम्बन्ध तुम्हारे हृदय से है और यही कारण है, जब तुम सहानुभूति करने पर आते हो, तो तुम केवल अपने विचार-मात्र से ही जीवन को संतुष्टि प्रदान करते हो और तुम्हारे विचार ही इसके साधन पैदा करते हैं। बाहरी रचना में, मंगल शक्ति का बल का भण्डार है, उस कर्त्तव्य का पालन तुम्हारे हाथ द्वारा होता है। वृहस्पति भण्डार है विद्या बुद्धि का। तुम्हारा मस्तिष्क इस शरीर में उसकी प्रधानता का दम भरता है। इसी प्रकार तुम्हारे सभी अंगों की व्यवस्था है। जो बाहर है, वही भीतर है, जो भीतर है, वही बाहर है।

जिस प्रकार, तुम आवश्यकता के अनुसार अपने चित्त की वृत्ति को चलायमान करके, अपने शरीर के भिन्न-2 भण्डारों से काम लेते हो, उसी प्रकार, जब किसी मण्डल के मनुष्य विचार शक्ति की सहायता करने से अपने में किसी विशेष अस्तित्व के पैदा करने की इच्छा करते हैं, तो यह इच्छा ब्रह्माण्ड के उस जैसे गोलार्ध में जाकर टकराती है और वहां से जो आत्मा नीचे उतर कर तुम्हारे मण्डल में उत्पन्न होती है उसमें उसी प्रकार की विशेषतायें विद्यमान होती हैं। जैसे यदि माता पिता इच्छुक हों कि उनकी सन्तान पढ़ी लिखी, विद्वान तथा योग्य हो, वह अनजाने में ही अपने शरीर की उस शक्ति के भण्डार को विचार द्वारा चलायमान करते रहेंगे, जिसका सम्बन्ध योग्यता और विद्वता से है। बार-2 एक ही विचार पर सोचने से, उसमें स्वयं वे गुण पैदा होंगे और उनके गुणों को देख कर, उनकी ओर आकर्षित हो कर उनकी सन्तान बनेगा। इसी प्रकार, यदि किसी जाति व देश के संगठित करने के विचार के मनुष्य इच्छुक हों, तो उनको विचार की दृढ़ धारणा अनभिज्ञता में वृहस्पति मण्डल को स्पर्श करती रहेगी और उनकी भावनाओं के सम्मान में वृहस्पति मण्डल की आत्मा उनमें जन्म धारण कर, उनकी मुक्ति के प्रश्न को हल कर देगी। यह एक उदाहरण है। इस उदाहरण से बड़ी आसानी से आपकी समझ में आ जाएगा कि किस प्रकार हम ब्रह्मलोक, विष्णु-लोक और सूर्यलोकों की आत्माओं को अपने मण्डल में बुला सकते हैं।

सारांश में, जो विचारवान हैं, जो अपनी आत्मा का कुछ भी परिचय रखते हैं या उसके विषय में कुछ भी जानते हैं,

वह इसी भांति सफलता के साथ अपना काम कर लेते हैं।

सरस्वती भण्डार से विद्या, लक्ष्मी भण्डार से धन, पार्वती भण्डार से हर प्रकार की सिद्धि व शक्ति प्राप्त की जा सकती है। मनुष्य जब दृढ़ता से, अटलता से, दृढ़ संकल्प शक्ति से किसी भी चीज़ की इच्छा करेगा, वह वस्तु उसे अवश्य प्राप्त होगी। इसमें तनिकमात्र भी सन्देह नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति केवल मनुष्य के भोग के लिए ही है अपने भोग के लिए नहीं। मेज़, कुर्सी, मकान, मुल्क, माल सब प्रकृति के रूप हैं। इनकी उपस्थिति स्पष्ट सिद्ध करती है कि वह किसी और के भोग के लिए हैं, अपने लिए नहीं। वह मनुष्य और कोई नहीं तुम स्वयं ही हो। तुम पुरुष हो, तुम आत्मा हो, तुम रूह हो। सारा खेल तुम्हारे लिए ही बना है, जो तुम्हारे ही मनोविनोद के लिए ही है। यदि तुम अपनी हैसियत भूल जाओ तो दोष तुम्हारा ही होगा और किसी का नहीं। बन्धन केवल अज्ञानी के लिए है। जो अपने आपको जानता है, उसको कोई बांध नहीं सकता। जब हम इस बात को समझ गए कि कुर्सी हमारे बैठने के लिए है और इसका कोई अभिप्राय ही नहीं। तो फिर हमारा इसके साथ सम्बन्ध भी इतना ही रहेगा और कुर्सी हमको अपने साथ नहीं बांध सकेगी। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि सरस्वती से विद्या, लक्ष्मी से सम्पत्ति, पार्वती से शक्ति व स्वास्थ्य तथा विश्व भण्डार से सारी सामग्री लेते हुए, उनसे लाभ उठाते हुए इस बात का सदा ध्यान रखो कि इनका महत्व कितना है और हमारा इनसे सम्बन्ध क्या है। इतना ज्ञान तुम्हें आत्मभण्डार से मिल

जाएगा फिर तुम कृत्य कृत्य हो जाओगे। जिसको आत्मा का ज्ञान हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा से ऐसा सम्बन्ध जुड़ जाता है कि उसमें द्वैत भाव ही नहीं रहता। भक्ति का, ज्ञान को, कर्म की तथा योग की अन्तिम अवस्था यही है कि मनुष्य की आत्मा इतना विस्तृत हो जाय कि उसमें सब के लिए स्थान हो जाय। यह बात उसी समय सम्भव है, जब वह अपने सामने इस सर्वव्यापक सर्बज्ञ व पूर्ण के इष्ट को सामने रख कर, इस प्रकार सच्चाई के साथ इसका ध्यान करे कि उसके परिमित व्यक्तित्व का तुच्छ भाव जाता रहे, तब उसको एकत्ववाद का दर्जा प्राप्त होगा और वह अमर हो जायेगा। अब तो पुम बार - 2 मरते और जीते रहे हो, क्योंकि मरना और जन्मना परिमित मण्डल का काम है। परन्तु जब तुम अपरिमित हो गए, कहाँ का मरना और कहां का जन्मना ?

मन की मनसा मिट गई,
अहं गई सब छूट।
गगन मण्डल में घर किया,
काल रहा सिर कूट ॥
जा मरने से जग डरे,
मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहों, कब पांइहों,
पूरन परमानन्द ॥

परमसन्त कबीर कहते हैं :

रोड़ा हो रहा बाट का, तज अपना अभिमान ।
लोभ मोह तृष्णा तजे, ताहि मिले निज नाम ।।
रोड़ा भया तो क्या भया, पन्थी को दु:ख दे ।
साधू ऐसा चाहिए, जैसे पेड़ी खेह ।।
खेह भई तो क्या हुआ, उड़ उड़ लागे संग ।
साधू ऐसा चाहिए, जैसा जार निपंग ।।
नीर भया तो क्या भया, जो ताता सीरा होय ।
साधू ऐसा चाहिए, जो हर ही जैसा होय ।।
हर भया तो क्या हुआ, जो कर्त्ता धरता होय ।
साधू ऐसा चाहिए, हर भज निर्मल होय ।।
निर्मल भया तो क्या भया, जो निर्मल मांगे ठौर ।
मल निर्मल से रहित है, ते साधू कोई और ।।

यह आत्मिक इष्ट है, यही आत्मिक उत्कर्ष है। गुरु तुम्हारा कल्याण करें।

फ़कीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट सुतैहरी रोड, होशियारपुर को दिया धन आयकर अधिनियम की धारा80-के अन्तर्गत,आयकर आयुक्त के पत्र नं. *JUDL TRUST 13999 dt. 31-12-91*, साल *30-4-93-94* तक आयकर से मुक्त है।

मिट गए सब भरम मन के, दिल में उजाला हो गया

परमसन्त परमदयाल पण्डित फ़कीरचन्द जी महाराज

मिट गए सब भरम मन के,
दिल में उजाला हो गया।
ज़िन्दगी को खेल समझा,
अनुभव का बोल बाला हो गया॥
थी ख्वाइश दिल में बता जाऊंगा,
इस भेद को।
जिसको समझने के लिए,
'फ़कीर' बावला हो गया॥
गरज़ नहीं मतलब नहीं,
बेख्वाइशी की हालत अपनी।
लोगों का जीवन बने,
यह मेरा शगुल अब हो गया॥

मैं उन भाइयों, महापुरुषों और लीडरों से, जो मानव जीवन के सुधार के इच्छुक हैं, उनको पूज्य मानता हुआ, कुछ कहना चाहता हूं। मगर कुछ कहने से पहले :-

हाथ जोड़ नवाय मस्तक,
सबसे मांगता हूं क्षमा।
जो कुछ है मौज लिख रही,
वह है मेरे जीवन का तजुरबा॥
बिन बुलाये महमान की,
नहीं होती है कोई भी इज्ज़त।
मगर इज्ज़त और मान के,
दरजे से कुदरत ने बरी कर दिया॥
दर्द दे कर दयाल बन कर,
मज़बूर करके कोई है लिख रहा।
अपने बस की कोई बात नहीं,
बस समझ लो मैं दीवाना हुआ॥

संसार के दुःखी लोग क्या चाहते हैं? धन, दौलत, इज्ज़त, मान, बढ़ाई, अमन तथा शान्ति। इसके बाद आगे बढ़ कर वे भक्ति, ज्ञान और निज स्वरूप (परमतत्त्व) के साक्षात्कार की लालसा रखते हैं। इसकी प्राप्ति के लिए वे क्या करते हैं :-

कोई कर्म उपाय पर ज़ोर देता है,
कोई करता है बन्दना।
कोई छल कपट चतुराई से,
मतलब है निकालता॥
कोई मन्दिर और मसजिद में जाकर,
करता है पूजा और बन्दगी।
कोई किसी मुरशिद के दर पर,
मस्तक जा के टिकाता है॥

कोई इमानदारी और सच्चाई के,
पहलू को अपनाता हैं ।
चलता सुराते❈मुस्तकीम पर,
और फल को उसके खाता है ॥
सारे कर्म किए हैं मैंने,
और तजुरबा अपनाया है।
सारी उम्र इस ख़ब्त में गुज़ारी,
लिख दिया जो समझ में आया है ॥

अपने जीवन के अनुभव को प्रगट करने के लिए मैंने कई पुस्तकें 'तशरीह हिदायतनामा,' 'तशरीह बारहमासा,' 'आवागमन', 'विश्व-शान्ति,' 'मनुष्य बनो,' आदि लिख डालीं और मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि मनुष्य को जो कुछ भी मिलता है, वह उसके अपने ही कर्म का फल होता है। मैं कर्म का अर्थ इच्छा, विचार तथा संकल्प से लेता हूं। इसी बात को प्राचीनकाल में ऋषियों, मुनियों तथा महापुरुषों ने समझाया है। इसी ही की पुष्टि वेद शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थ करते हैं तथा इन के भिन्न २ साधन तथा उपाय बताए गए हैं। लेकिन मन की चंचलता के कारण मनुष्य उन पर अमल करने में कठिनाई का अनुभव करता है। यदि अमल के इच्छुक प्रयत्न भी करते हैं, तो मार्ग पेचीदा और लम्बा होने के कारण सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः वर्तमान कलियुग में सफलता का यदि कोई सरल नुस्खा है, तो वह केवल नाम है :-

❈ सीधा रास्ता

कलि केवल एक नाम अधारा।
श्रुति स्मृति संतमत सारा ॥

नाम में तीन बातें शामिल हैं :

(1) सुमिरन
(2) ध्यान और
(3) भजन।

सुमिरन का अर्थ है याद करना, ध्यान का अर्थ है तसव्वुर (किसी का ध्यान बाँधना) और भजन कहते हैं महवियत प्राप्त करने को, लय होने को। इसके साधन के लिए जिज्ञासु का किसी पूर्ण पुरुष, या इस भेद के ज्ञाता का सत्संग करना और उस पर अमल करना आवश्यक है।

गायत्री के प्रणायाम मन्त्र में सात स्थानों का वर्णन है, जिसकी समानता सन्तों के वर्णित स्थानों से इस प्रकार की जा सकती है :-

प्राणायाम के स्थान--ओं भू, भुवः स्वः, महः, तपः जनः

सन्तों के स्थान--सहस्रदलकमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, तपः, सत्यम्, भंवर गुफ़ा, सतलोक

सहस्रदलकंवल :--यह रचनायें बाहर भी हैं और तुम्हारे अन्दर भी। बाहर रचना में यह सृष्टि का आधार तथा कर्त्ता धर्त्ता है। इसी प्रकार, तुम्हारे अन्दर का ज्योतिस्वरूप, जो तुम्हारा मन है, वह तुम्हारी ज़िन्दगी को बनाने वाला भी है और बिगाड़ने वाला भी है। यह स्थान दोनों भौंओं के बीच में है।

जिस प्रकार की इच्छा तुम अपने मन में धारण

करोगे, पहले उसकी याद दिल में स्थित होगी, फिर उसका रूप या ध्यान बनेगा। उसके पश्चात इच्छा का घनापन, भजन के रूप में आ कर दिल में लय हो जायेगा और उसी प्रकार के हालात पैदा हो कर, उस इच्छा की पूर्ति का प्रबन्ध कर देंगे। मगर यह ध्यान रहे कि यदि तुम्हारी इच्छा नेकी और सच्चाई पर निर्धारित है, तो उसका परिणाम सुखदायक और आनन्ददायक होगा और यदि वह इच्छा दूसरों को हानि पहुंचाने की है, तो वह भी पूरी तो हो जायेगी, मगर उसका नतीजा सुखदायक न होगा। इसलिए ही तो हृदय की शुद्धि को सन्तों ने मुख्य माना है।

त्रिकुटी :-रचना में यह स्थान बाहर भी है तथा अन्दर भी। बाहर नरदेही में मस्तिष्क में सहस्रदल से कुछ ऊपर है। इसका मालिक ओंकार है। यह तुम्हारे अन्तर में भी है। इसका आधार तुम्हारा मन है. जिसमें विवेक और समझ है। कुदरत में प्रत्येक कार्य किसी उसूल और तरीके से हो रहा है। मनुष्य को हर प्रकार का इल्म या ज्ञान, चाहे वह ज्ञान सांसारिक हो, पारमार्थिक हो या किसी और प्रकार का हो, अपने अन्तर में सुमिरन, ध्यान तथा भजन से प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार की वासना, भलाई व बुराई को ले कर मनुष्य अमल करेगा, वैसा ही परिणाम निकलेगा। हां, यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है कि वह कैसा इल्म प्राप्त करना चाहता है।

सम्भव है कि कोई आचार्य,महन्त तथा गद्दीपति,या पुस्तकों के वाणी जाल में फंसे हुए लोग, मेरी बात को ग़लत समझें, परन्तु मैं अपने अन्तर के सच्चे अनुभव के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि मेरा अनुभव ठीक है।

जब मुझे या किसी और सत्संगी को कोई प्रबल इच्छा

होती थी, तो हम दाता दयाल जी को उसके विषय में लिख देते थे। वह जवाब देते थे कि हमारी इच्छा पूरी हो जाएगी। यदि हमारी इच्छा प्रबल होती थी, तो पूरी हो जाती थी। परन्तु यदि इच्छा प्रबल नहीं होती या हम भ्रम या दुविधा में फस जाते, तो इच्छा पूरी होने में कामयाबी नहीं होती। मैंने स्वयं भी यह अनुभव किया है कि जब कोई जबरदस्त इच्छा वाला विश्वासी मनुष्य मेरे पास आता है, तो मैं उसे ताकतवार ख्याल दे देता हूं। यदि वह उस ख्याल को विश्वास में बदल लेता है तो वह अपने लौकिक और पारलौकिक कष्टों से छुटकारा पा कर सफल हो जाता है। किसी ने कहा है :-

भावना पक्की हो मन में,
पक्का ही विश्वास हो।
क्यों न ऐसे जन की,
इस रचना में पूरी आस हो॥
आस में विश्वास,
और विश्वास विश्व की आस है।
जिस में यह विश्वास है,
वह कैसे जग में निराश हो॥

बहुत से भाई मुझे करामाती समझते हैं। मेरे पास कोई करामात नहीं है। मुझे उसूल का इल्म है। हां, जो मनुष्य भ्रम या दुविधा का शिकार हो जाता है, वह असफल रहता है। जो आशावादी हो कर, अपनी इच्छा या वासना में कमज़ोरी नहीं आने देता वह अपना काम बना लेता है।

सच्चे साधू या गुरु का काम मनुष्य को दुविधा से बचाना है। महाभारत की लड़ाई में अर्जुन दुविधा में फंस गया था। कृष्ण ने गुरु रूप धारण करके, समझा बुझा कर अर्जुन की दुविधा को दूर किया, जिससे उसके ख्याल को विश्वास मिला और वह सफल हुआ।

हमारे ऋषि मुनियों का हमें गायत्री मन्त्र की शिक्षा देने का ध्येय यह था कि हम सांसारिक जीवन में सफल हों। इस मन्त्र की तह में यह गुप्त भेद है कि "जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे उस सूर्य का दर्शन करो। वह तुम्हारी बुद्धि का प्रेरक होगा" बुद्धि, ज्ञान या सार मनुष्य को संसारिक जीवन में सफल बनाती है। जिस कदर लोगों ने सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त की है, सब ने जाने या अनजाने, इसी सुमिरन, ध्यान और भजन के उसूल पर अमल किया है। यह दूसरी बात है कि इनको उसूल का ज्ञान था या नहीं, मगर स्वाभाविक रूप से अमली जीवन में इसी उसूल ने ही काम किया है।

अब सवाल किया जा सकता है कि दुनियावी इच्छाओं को पूरा करने के लिए समिरन और ध्यान किसका किया जाय और किस तरह किया जाय।

इस विषय में मेरा उत्तर यह है कि इस नामरूप के जगत में, नाम और रूप ही मदद कर सकते हैं। हिन्दू धर्म की पौराणिक शिक्षा ने तो कमाल ही कर दिया है हर एक इच्छा को पूरा करने के लिए, उनमें भिन्न - 2 इष्टों का सुमिरन और ध्यान बताया गया है। विद्या की प्राप्ति के

सरस्वती, धन को प्राप्ति के लिए लक्ष्मी और शक्ति को प्राप्ति के लिए दुर्गा के रूप का ध्यान करने को बताया गया है। इस कलियुग में जीवन बहुत पेचीदा हो गया, लोगों की ज़रूरतें बहुत ही बढ़ गई हैं उनके पास ध्यान करने का न तो समय है और न ही ध्यान में उनका मन टिकता है। इसलिए सन्तों ने, फ़कीरों ने एक सरल सा नुसखा तजवीज़ किया है। वह यह है कि किसी अमली पूर्ण पुरुष के ध्यान करने से सब प्रकार की इच्छाओं व आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

हमारे शास्त्र सच्चे और प्राकृतिक ज्ञान से भरे हुए हैं। परन्तु लोगों को उनके पढ़ने की फ़ुरसत ही कहां है। कलियुग में हर काम जल्दी से किया जाता है। इसलिए गुरु शिष्य को काम को जल्दी पूरा करने के लिए तरीका, तजवोज़ तथा तदवीर बताता है। अतः गुरु के रूप का ध्यान और गुरु द्वारा दिया हुआ नाम ही शिष्य को सफल बनाता है, क्योंकि गुरु के ध्यान में पूर्णता मानी गई है।

मुझे शब्द नहीं मिलते जिससे कि मैं अपने भाव को ठीक तरह से प्रगट कर सकूं कि "ऐ मानव! तेरे दिल में शक्ति का भण्डार है। तू प्रकृति माता का लाडला बेटा है। प्रकृति ने आरम्भ से ही तुझमें अनन्त शक्ति भर रखी है। परन्तु तू अज्ञानी है, तू इस शक्ति से काम लेना जानता ही नहीं और अनजाने में कभी - 2 ऐसे अनुचित कार्य कर बैठता है, जो तुम्हारे लिए कष्टदायक सिद्ध होते हैं। अतः तू किसी पूर्ण पुरुष का सहारा ले और उसके सत्संग से अपनी छुपी हुई शक्ति का प्रयोग कर।"

तुम अपने कर्त्ता स्वयं आप हो, दूसरों के नहीं। सुख तथा शान्ति के जिज्ञासुओं के लिए घरेलू, राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में एक सी इच्छा और ख़्याल की बहुत ज़रूरत है। रायसाहब ज्ञानसिंह वेदों का एक मन्त्र सुनाया करते हैं, जिसका अर्थ है एक ख्याल हो कर रहना, इकट्ठे चलना इत्यादि। घरेलू जीवन में सब सदस्यों का मिल जुल कर रहना आवश्यक है। जब तक घरेलू जीवन में स्त्री, पुरुष और परिवार के सदस्यों की एक सम्मति नहीं होगी जीवन कदापि सुखदायक नहीं हो सकता। इसी प्रकार, देश की शान्ति के लिए इत्तफ़ाक, सहमति की बहुत ज़रूरत है। यदि सब व्यक्ति अपने - 2 काम को ठीक तरह से करें, तो देश आगे बढ़ सकता है। छोटे - 2 मण्डल इकट्ठें हो कर बड़ा मण्डल बना देते हैं।

सफलता का एक मात्र साधन सुमिरन, ध्यान और भजन ही है। अपनी इच्छा व वासना को याद करते रहो, यह सुमिरन है, उसका रूप बनाओ यह ध्यान है। लगातार ध्यान में उसमें लय हो जाओ, यह भजन है। सत्संगी कहेंगे कि भजन तो अनहद शब्द सुनने का नाम है। यह ठीक है, मगर उसके लिए भी प्रबल इच्छा और दिल की एकाग्रता ज़रूरी है।

याद रखो कि हर प्रकार की वासना या इच्छा एक प्रकार का सूक्ष्म मादा है या सूक्ष्म प्रकृति है। मेरी 'मनुष्य बनो' व 'उन्नति मार्ग' नाम की पुस्तकों को पढ़ो, उसमें इसका पूर्ण विवरण है। क्योंकि मादा या प्रकृति हर समय हरकत या जाति में रहती है और हरकत में से शब्द और प्रकाश का प्राकट्य (इज़हार) होता है, इसलिए यदि सौभाग्य-

वश वासना के दौरान में वृत्ति अन्तर में ठहर जाय, तो उससे जो शब्द प्रगट होगा, वह उस व्यक्ति की इच्छा या वासना की प्रकृति का होगा। उसके सुनने से सफलता बहुत ही शीघ्र मिलेगी। इसलिए ही सन्तों ने सहस्रदल कमल के भिन्न-२ भिन्न प्रकार के शब्दों का ज़िक्र किया है। जहाँ आरती होती है, आरती में घण्टा शंख आदि बजते हैं।

यह शब्द भिन्न-प्रकार की उचित और अनुचित वासनाओं के होते हैं, जो कि प्रकृति है। जिस इच्छा या वासना को लेकर, मनुष्य अपने अन्तर में ठहरेगा, वह उसी ही वासना की प्रकृति के शब्द को सुनेगा। यदि उस इच्छा में किसी की बुराई, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या या लालच भरा है, तो नतीजा दु:खदायक होगा। इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं को किसी पूर्ण पुरुष के आदेशानुसार रखे।

साधारणतया लोग दो दो, तीन तीन घन्टे अभ्यास में बैठते हैं और शिकायत करते हैं कि उनको, वह अन्दरूनी शब्द जो पुस्तकों में बताए गए हैं, या सत्संग में जिनका हवाला दिया जाता है सुनाई नहीं देते। इसमें ऐसे लोगों की समझ का दोष है। चूंकि शब्द प्रकृति से पैदा होता है, इसलिए जब तक उसकी आन्तरिक इच्छा का ज़ोर न होगा या वासना प्रबल न होगी, मनुष्य को पुस्तकों में बताए गए शब्द सुनाई नहीं देंगे। अत: यह ज़रूरी है कि पहले मनुष्य अपनी वासना को तीव्र करे, उसे फिर अन्दरूनी शब्द जो वासना की प्रकृति से पैदा होगा, सुनाई देगा।

अब सवाल उटता है, "यदि कोई व्यक्ति इन स्थानों का अन्दरूनी अनहद शब्द न सुन सके, तो क्या उस सूरत में भी वासना का पूर्ण होना सम्भव है ?

इसका उत्तर ध्यान से सुनो। त्रिकुटी का स्थान गुरु का स्थान है, ओंकार का स्थान है और यह ओंकार तमाम रचना में व्यापक है। जब तुम सृष्टि का ध्यानपूर्वक अध्ययन करोगे, तो इसका पता लग जायेगा। यद्यपि सांप की टाँगें नहीं होतीं, मगर उसकी पसलियाँ ही ऐसी तरकीब से बनाई गई हैं कि वह भली भांति दौड़ सकता है। ऊंट का यदि कद लम्बा है, तो उसकी गर्दन भी लम्बी बनाई गई है। इस उसूल को जो रचना में काम करता है, उसे गुरु, ज्ञान या ओम कहते हैं। यह ओम, या उसूल या कानूनेकुदरत स्थूल रचना में व्यापक है। इसलिए जिस मनुष्य को किसी वासना की पूर्ति की लालसा है, उसके लिए ज़रूरी है कि वह अन्तर में एकाग्रता प्राप्त करे। इसके बाद स्वयं ओंकार या ओम मनुष्य के अन्दर समझ, विवेक तथा नई - 2 उपज देता रहेगा। प्रत्येक इच्छा के प्रभाव से, उसकी पूर्ति का सामान कुदरत में पैदा होता रहता है।

काम रुक सकता नहीं,
ऐ दिले नादां कोई।
खुदबखुद ग़ैब से,
हो जायेगा सामां कोई ॥

त्रिकुटी क्या है ? ध्याता, ध्येय और ध्यान, प्रेमी, प्रेम का आदर्श (प्रेम पात्र) और प्रेम, इच्छुक, इच्छित वस्तु

और इच्छा। यही उमूल पारमार्थिक या रुहानी जिन्दगी में भी काम करता है। रुहानी या आध्यात्मिक जीवन के लिए भी पहले त्रिकुटी में आना अनिवार्य है। यह ओंकार, ज्ञान या समझ तो गुरु का रूप है और प्रवृति और निवृति मार्ग दोनों में सहायता करता है। यही कारण है कि वेदों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में ओम की महिमा का वर्णन किया गया है। हर मन्त्र का उच्चारण करने से पहले ॐ शब्द कहा जाता है।

योग-साधन या आन्तरिक चढ़ाई के लिए साधक को शब्द और नूर (प्रकाश) दोनों की आवश्यकता है। बिना शब्द और प्रकाश के अनुभव के वग़ैर भी, मनुष्य मस्ती या आनन्द की अवस्था तक जा सकता है, मगर वहा थिरताई नहीं रहती और न ही यह इष्ट पद है। यही कारण है कि सन्तों ने कलियुग में, जीवों की कमज़ोर प्रकृति का ध्यान रखते हुए, अमली दृष्टि से शब्दयोग की तालीम दी। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य किसी पूर्ण और मर्मज्ञ पुरुष का सत्संग करे ताकि वह सही आदेश ले सके।

साधारणतया देखने में आता है कि नामधारी लोग दुःखी दिखाई देते हैं। उनका घरेलू, साँसारिक और मानसिक जीवन दयनीय होता हैं। क्यों? ऐसा क्यों होता हैं? वास्तव में, गुरु धारण करने का अभिप्राय यह कदापि नहीं होता कि आपका दृष्टिकोण संकुचित हो जाय और आप दूसरे गुरुओं की हंसी उड़ायें। गुरु धारण करने का अभिप्राय है कि गुरुज्ञान के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को आनन्दमय बना ले। यदि किसी को कोई पूर्ण गुरु मिल जाय और

वह गुरु की सेवा करके, उसके सत्संगों का सार समझ कर, उसको अपने जीवन में उतारे तो उसको सफलता शर्तिया है। यह भेद जो मैंने समझा है, आपको बता दिया है।

न दावा है कोई मुझे,
मैं अपना तजरुबा कहता हूँ।
दावा करने वाला नादां है,
यह मैं सत कहता हूँ॥

एक इष्ट बनाओ और उसको पूर्ण मानो। उसका कोई नाम रखो, कोई रूप बना कर उसे अपने दिल में बिठाओ और उसके ध्यान में डूबे रहने का प्रयत्न करते रहो, तुम्हारी हर प्रकार की वासनायें स्वयं पूर्ण होती रहेंगी। जैसे - 2 ध्यान या वासना में पक्कापन होता जायेगा, जीवन आनन्ददायक, सुखदायक और शान्तिमय होता जायेगा। खास - 2 स्थानों या चक्रों पर एकाग्रता प्राप्त करने से तुम जीवन में सफल होते जाओगे।

एक जिज्ञासु का प्रश्न :-क्षमा कीजिए महाराज जी! आप इस बुढ़ापे में मजदूरी करते हैं। पैंसठ या अस्सी रुपए महीने में आपका गुज़ारा कैसे चलता है? यदि आपका उसूल सच्चा है कि गुरु के ध्यान में डूबे रहने से मनुष्य की सभी वासनायें, सभी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, तो आप तो गुरुमुख हैं गुरु के ध्यान में डूबे रहते हैं, आप धनी क्यों नहीं बन सके?

उत्तर में मैंने कहा, "आपकी निर्भयता और सच्चाई

के लिए धन्यवाद ! सुनो, अर्सा हुआ लाहौर में दाता की पुत्री चुनमुन देवी (पत्नी थी गौरीशंकर लाल अखतर का देहान्त हो गया। मैं उस समय दाता के पास ही था। मुझे सम्बोधित करके दाता ने कहा, "फ़कीर ! मैं बचपन से ही पारमार्थिक उन्नति का अभिलाषी था। पुस्तकों में अध्ययन किया था कि यदि मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से छुटकारा मिल जाय, तो वह जल्द ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। मेरे मन में इस ख्याल का असर पड़ा। आज मेरी लड़की चली गई।" मेरे पास गौरीशंकर अख्तर बैठे थे जो लगभग मेरी ही उम्र के थे उन्होंने मुझे कई बार पहले भी यह कहा था। कि अगर स्त्री न हो तो परमार्थ में शीघ्र लगा जा सकता है। मुझे भी बचपन से फ़कीरी का ही ख्याल था धन और मान की इच्छा नहीं थी। आठ वर्ष की आयु में फ़कीरी के लिए घर से बाहिर निकल पड़ा था, पिता जो नौ मील से पकड़ कर वापिस लाए थे। जब दाता की शरण में पहुंचा, तो उनकी शिक्षा के संस्कार के कारण मेरा रूझान दुनिया की ओर गया। सारी ज़िन्दगी अपनी कमाई की बचत को दाता दयाल के नाम धाम में भेजता रहा। श्री नन्दूभाई ने दातादयाल की आज्ञा से मेरा भेजा हुआ सब रुपया मेरे नाम से बैंक में जमा कराया हुआ था। उस समय मुझको इस बात का ध्यान न था। उन्होंने वह सारा पैसा मेरी स्त्री को सौंप दिया और मुझे हुक्म दिया कि "बावले। अपना कमाओ और अपना खाओ।" मेरी स्त्री को आज्ञा दी कि इस रुपए में से एक पैसा भी फ़कीर को न देना। सन्त सद्गुरु रेख में मेख मारते हैं। दाता ने मेरे कर्म को बदल दिया। मैंने कभी भी धनवान बनने की इच्छा नहीं

की इसलिए धनवान बनता हो कैसे, बस निर्धन ही रहा।

याद रखो ! प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न 2 होती है जैसा जिसका ख्याल होता है, वैसा ही उसका हाल होता है। मुझे धनवान बनने की वासना ही नहीं थी। हाँ यह मेरी कोशिश जरूर रही है कि अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए मुझे किसी के आगे हाथ न फैलाने पड़ें। आज तक दाता ने मेरी लाज रखी है, और निश्चित रूप से वह आगे भी मेरी लाज रखेंगे। मेरा लड़का इन्जिनीयरिंग कालेज में पढ़ना चाहता था। चूंकि मेरे पास उसके खर्चे के लिए पैसा नहीं था मैंने उसे मना कर दिया। उसने मेरे छोटे भाई को इस विषय में लिखा, मेरे भाई ने उसकी मदद की और कर रहा है। मैं ग़रीब इसलिए हूं क्योंकि मैंने अमीर बनने की कभी इच्छा या वासना ही नहीं की। मेरी वासना तो आरम्भ से ही उस सार तत्व को जानने या सत्त पद की प्राप्ति की थी, जो पूरी हो गई।

प्रश्न :- क्या यह ग़लत है कि जैसे जिसके पहले कर्म होते हैं, वह वैसा ही बन जाता है।

उत्तर :-ग़लत नहीं ठीक है, मगर इस तरह की तालीम हानिकारक हैं :-

तदवीर इन्सां तक़दीर इन्सां,
के मताहत है दोस्तो।
मगर ऐसा कहना और समझना,
हैं जुर्म कबीर दोस्तो॥
इंसां को बना देता है,
ऐसा ख्याल मुर्दा दिल।

बूढ़ों के लिए अच्छा है,
बेशक यह ख्याल दोस्तो ।।

युवकों बच्चों और गृहस्थी जीवों के लिए यह तक़दीर की तालीम भयंकर है। उनके लिए त्याग और वैराग्य की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

श्री रामचन्द्र जी ब्रह्मा के अवतार थे। संसार से वैराग्य उत्पन्न होने पर वह गुरु वशिष्ठ के पास गए और अपने विचार प्रगट किए। उनकी बातें सुनकर व्यास ने कहा :

"हे राम ! दैव दैव आलसी जीव ही पुकारा करते हैं। वशिष्ठ के शब्दों ने राम से वह काम कराया कि जब तक भारतवर्ष कायम है, उनकी याद लोगों के दिलों में जीवन फूंकती रहेगी। मित्रो ! साहस और दृढ़ता से काम लेकर संसार में आनन्द से जीवन बिताओ। सहसदल कंवल और त्रिकुटी में डेरा डाल कर संसार का काम करो। बच्चों को ऊंचे स्थानों के साधन की शिक्षा देना हानिकारक सिद्ध होगा। आजकल नौजवान लड़के लड़कियों को नाम दे दिया जाता है। इससे उनका सांसारिक जीवन किसी भी सूरत में बेहतर नहीं हो सकता। उनको तो केवल गायत्री मन्त्र, सुमिरन और ध्यान के उसूल बता देना ही काफ़ी है।

श्री हरिप्रकाश गुप्ता, जो श्री रघुनाथ सहाय के सुपुत्र हैं मैट्रिक में पढ़ते थे। उनके पिता के बार-बार अनुरोध

करने पर दाता ने उन्हें नाम दे दिया। जब वह दो दिन अभ्यास कर चुका तो दाता ने उसे अभ्यास करने से मना कर दिया और उसे शिक्षा प्राप्त करने तथा ब्याह करने को कहा और पिछली उम्र में अभ्यास करने की सलाह दी।

मेरे छोटे भाई राय साहिब सुरेन्द्रनाथ मेरी देखा देखी छोटी उम्र में ही सत्संगी हो गए। दातादयाल जी महाराज ने उन्हें नाम की महिमा बताते हुए एक कागज़ पर लिख दिया:

"For Surendra :

Life means work and work means life."

सुरेन्द्र के लिए जीवन ही काम है और काम ही जीवन है। अन्तिम अवस्था में तुम राधास्वामी दयाल की गोद में जाओगे। पुस्तकीय ज्ञान भी ठीक है, मगर वह पूर्ण गुरु के सत्संग द्वारा ही समझा जा सकता है। आजकल पुस्तकों का तूफ़ान आया हुआ है। परन्तु बिना गुरु का दामन पकड़े, केवल पुस्तकों के अध्ययन से मनुष्य गलती कर सकता है। मैंने निज अनुभव के आधार पर ही "मनुष्य बनो" की आवाज़ उठाई है। हर काम सोच समझ कर प्राकृतिक नियम के अनुसार ही करो और गुरु परायण बनो :

गुरु मता धारण करो,
इस बिन नहिं कल्याण।
गुरु बिन नहिं धन धाम है,
शक्ति, मुक्ति सतज्ञान ॥
ताते सबको चाहिए,
ढूंढे कोई कामिल इन्सान।

जो गुरु आज्ञा बरतते,
वे हैं चतुर सुजान ।
जोवन के आदेश को समझ,
करो अपना कल्याण ।
एक ही लाठी में मत हांको,
कुत्ता, गधा और इन्सान ॥
वाणी पढ़ पढ़ भरम में भूले,
अरु पाया दुःख महान ।
बिन जीवित कामिल पुरुष के,
कभी न मिटता अज्ञान ॥

आवश्यक सूचना

सभी सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि मन्दिर को मनीआर्डर आदि भेजते समय अपना पता तथा पिनकोड नं. साफ़-2 लिखें ताकि पढ़ने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो और मनीआर्डर आदि केवल सैक्रेटरी मानवता मन्दिर या सैक्रेटरी फ़कीर लायब्रेरी चेरिटेबल ट्रस्ट, मानवता मन्दिर सुतेहरी रोड, होशियारपुर के नाम पर भेजें किसी व्यक्तिगत नाम पर नहीं।

जनरल सेक्रेटरी

परम सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का सत्संग

गुरुर्ब्रह्मा गुरु विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:
गुरु: साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नम:

राधास्वामी

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सत्संगी भाईयो और बहनो ! आज जब मैं आपके घर आया तो मेरे मन में सत्संग देने की इच्छा हुई, आपने स्वयं ही सत्संग के लिए कह दिया। सत्संग से पहले मैंने गुरु को नमस्कार किया। ख़ासकर सन्तमत में गुरु शब्द की बहुत महिमा है। गू का मतलब अन्धेरा है और रु का मतलब है मिटाने वाला अर्थात् जो हमारे मन के अज्ञान के अन्धेरे को मिटाता है उसे गुरु कहते हैं। अब यह अज्ञान क्या है ? अज्ञान है कि हम अपने असली स्वरूप को, असली को भूल गए। यह भूल गए कि हम कौन हैं ? गुरु का अर्थ परमतत्व, सर्वाधार मालिक है। इसी परमतत्व की एक बूंद से सारा विश्व कोटि - 2 ब्रह्माण्ड, पृथ्वी और मंडल, आकाश गंगाएं करोड़ों सूर्य आदि निकले हैं। हम जिस आकाश गंगा में रहते हैं, उसमें अरबों सूरज हैं, हमारा तो एक सूरज हैं जिसके चारों तरफ पृथ्वी

चक्कर लगा रही है और दूसरे गृह भी चक्कर लगा रहे हैं। अब आप सोचिए कि अरबों सूरज, पृथ्वियां आदि आदि। जिस मालिक की एक बूंद से इतना अनन्त प्रसार है, तो वह कितना महान तथा अनन्त होगा। उसका कोई पारावार नहीं है। तो गुरु का मतलब है सबसे ऊंचा, सबसे बड़ी हस्ती। अब उस मालिक को किसी ने ईश्वर कह दिया, किसी ने अल्लाह कह दिया, किसी ने गौड कह दिया और किसी ने कर्तापुरुष कह दिया, मैं यह नहीं कहता कि यह नाम गलत है। ये नाम भी सही हैं यदि हम इन नामों का अर्थ समझें। सिक्ख धर्म में हैं एक ओंकार सतगुरु प्रसाद कर्तापुरुष निर्भय निरभौ निरअहंकार। अब लोग इसको पढ़ जाते हैं, मगर इसका अर्थ समझते नहीं हैं, यदि इसको समझ जायें, तो उनका सारा जीवन ही बदल जाए। मगर लोग मनुष्य का चोला पाकर भी दुःखी हैं। क्योंकि वह स्वयं अपने ख्यालों के जाल बुनते हैं और उनमें स्वयं फंसते चले जाते हैं। अगर यह ज्ञान हो जाए कि मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं? तो बाहरी गुरु की जरूरत नहीं रहती। शायद गुरु गोविन्द सिंह जी ने कहा है :

मैं हूं परम पुरुष को दासा,
देखन आयो जगत् तमाशा।

आए तो हम परमधाम से हैं, और वापिस भी वहीं जाना है, अगर यह ज्ञान आदमी को हो जाए, तब वह गुरु को समझ सकता है और उसे शान्ति मिल जाए। बाकी जो लोग भजन कीर्तन करते हैं, उससे कुछ देर तो आनन्द आ सकता है, मगर मालिक को पा नहीं सकता। अब नाम दे दिया लेकिन उन नामों का अर्थ नहीं समझा। अब

एक ओंकार को ले लो। एक है और उस एक से अनेक नाम बन गए अर्थात् एक से अनेक ब्रह्माण्ड बन गए। 'सतगुरु प्रसाद' एक ओंकार भी उस परम गुरु का प्रसाद है, यह प्रसाद गुरु से मिला है। मालिक की एक बूंद से यह सारा ब्रह्माण्ड बना है। लेकिन यह बूंद हमारे अन्दर भी है। हमारे अन्दर भी वही तत्व है, जहाँ से हम आए हैं। लेकिन हमें उसका ज्ञान नहीं है। वह तत्व अज्ञान के पर्दे से ढका हुआ है अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि से ढका हुआ है, क्योंकि हमारे अनेक जन्म हुए हैं। आज धर्म के बारे में यदि कोई चीज़ साईंस ने मानी है, वो है पुनर्जन्म। विशेषकर पश्चिम के अन्दर इसकी बहुत खोज हो रही है। हमारे यहां तो पुनर्जन्म को मानते हैं। कभी कभी वही आत्मायें आकर मिल जाती हैं। कभी बाप के रूप में, कभी बेटे के रूप में, कभी बहन भाई के रूप में। यदि पुनर्जन्म समझ में आ जाये, तो घर में शान्ति रह सकती है।

अमेरिका में एक बड़ा ऋषि हुआ है, जिसका नाम एडगर केसी था। वह अपने मामा के पास रहता था। जब एडगर केसी सीधा सो जाता था, तो उसके दोनों हाथ जुड़ जाते थे और उसे आकाश की बातें पता चलने लगती थी। सब लोग बड़े हैरान थे। उसके घर के पास डा. कैचन रहते थे। उन्होंने एडगर केसी का इस्तेमाल किया। एक बार एक पाँच साल की बच्ची, जो बेहोश हो जाती थी, डाक्टर के पास आई। जब डा. कैचन की समझ में रोग नहीं आया, तो उसने एडगर केसी को सीधा लिटाकर सुला दिया और पूछा कि फलां लड़की का रोग क्या है? एडगर केसी ने कहा कि लड़की मेरे सामने है। मैं अन्दर

से उसके शरीर को देख रहा हूं। उसकी रीढ़ की हड्डी में फलाने स्थान पर गिरने से चोट लगी है। चोट के स्थान पर फलाने तेल की मालिश करो ठीक हो जायेगी। डा. कंचन ने लड़की की मां से गिरने की बाबत पूछा तो उसने कहा कि हाँ, यह लड़की गिरी थी। तेल मलने से लड़को ठीक हो गई। उसने हज़ारों लोगों की बीमारी बताई। एडगर केसी पढ़ा लिखा नहीं था। 1910 में अखबारों में उसके लेख निकले। एक हस्पताल खोला गया, जिसमें लाईलाज बीमारियों का इलाज किया जाता था। एक लैमर नाम का व्यक्ति था, जिसे ब्लड प्रैशर की बिमारी थी। उसने कैसी को घर बुलाया और अपनी बीमारी के बारे में पूछा। एडगर केसी ने कहा कि तुम्हारी यह बीमारी शारीरिक नहीं है। तुम्हारी इस जन्म की पत्नी पिछले जन्म में भी तुम्हारी पत्नी थी, जो तुम से नफ़रत करती थी, अब तुम अपने अचेतन मन में उससे नफ़रत करते हो, इसलिए तुम बिमार हो। तुम उससे नफ़रत करना छोड़ दो, प्यार करो, तुम्हारी बीमारी दूर हो जाएगी। जब एडगर केसी उठा, तो उसने कर्म सिद्धान्त को पढ़ा। उसकी हर बात रिकार्ड की जातो थी और लिखी जाती थी। उसने देखा कि कर्म और पुनर्जन्म जैसे शब्दों का उसने प्रयोग किया है। वह इसाई था, इसलिए घबरा गया। उसने सोचा कि बाइबिल में कहीं भो नहीं लिखा है कि पुर्नजन्म नहीं है, बल्कि उसने कई ऐसे पैसिज निकाले, जिससे सिद्ध हो गया कि पुनर्जन्म है। उसने पुनर्जन्म पर कई किताबें लिखीं। दुनिया में सब जगह उसकी किताबों का प्रचार है। मैंने भी उस पर एक किताब लिखी है। मैंने अपनी किताब में बताया है कि हमारे धर्म में और

हमारे विज्ञान में उसका आधार क्या है ? मैं आपको बता रहा था कि पुनर्जन्म एक ऐसी चीज़ है, जिसको कोई धर्म, कोई साइंस इन्कार नहीं कर सकती। सन्तमत भी पुनर्जन्म को और कर्म सिद्धान्त को मानता है।

कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन्ह सो तिस फल चाखा।।

यदि मनुष्य इतना समझ जाए कि हमारे पिछले जन्मों के कर्मों के कारण ही हमें दुःख मिला है, तो वह दुःखी नहीं होगा। गुरु इस अज्ञान के अन्धकार को हटा करके वह ज्ञान दे देता है, जिससे पता चल जाता है कि मैं परमतत्व के पास से हो आया हूं और वापस भी मुझे वहीं जाना है। शरीर, मन, बुद्धि क्या है ? अरे यह तो कपड़े हैं। इस ज्ञान के आ जाने से जीवन सुखी हो जाता है।

गुरु ब्रह्मा :-

गुरु ब्रह्मा है। सृजन करने वाला है। वह आपका नया जीवन बनाता है। आपके व्यक्तित्व को बनाता है। इसलिए गुरु को ब्रह्मा कहा गया है। गुरु विष्णु:। गुरु ने जो आपको ज्ञान दिया है, वह ज्ञान आपकी रक्षा भी करता है। इसलिए गुरु को विष्णु भी कहा गया है। गुरु देव महेश्वरा: शंकर क्या करते हैं ? शंकर आपके अज्ञान का नाश करते हैं। इसलिए सन्तमत में बाहरी गुरु का विशेष महत्व है. मगर बाहरी गुरु के असली रूप को पहचानो। उसके कपड़ों को मत देखो उसके व्यवहार को मत देखो। आप यह समझो कि मालिक ने गुरु को आपके पास भेजा है। जब आप गुरु को परमतत्व मानोगे, तो

आपके सारे काम बन जायेंगे। 'गुरुः साक्षात् परब्रह्म' ब्रह्मा विष्णु शिव से परे जो असली परब्रह्म मालिक है वह गुरु हैं। परब्रह्म दिखाई नहीं देता। वह आपको गुरु के रूप में दिखाई देता है। इसलिए गुरु की बहुत महिमा है। गुरु के कहने पर चलने से आप अपने आपको पहचान लेंगे। इस लिए गुरु के कहने के मुताबिक अभ्यास करो। अभ्यास धीरे धीरे हमारे अज्ञान को दूर करता है। अभ्यास लगातार करने की ज़रूरत है, क्योंकि कई जन्मों के कारण आप यह भूल गए कि आप परमतत्व हैं। आपके अन्दर एक ऐसी चीज़ है, जो कायम और दायम है यह कभी मरती नहीं है। इसे आत्मा कहते हैं। अब आप पूछेंगे कैसे? यदि मैं शरीर होता तो मैं छोटे से बड़ा कैसे हो गया, क्योंकि शरीर के सात साल में सैल बदल जाते हैं। फिर भी आप कहते हैं कि 'मैं यह था'। वह क्या चीज़ है, जो यह कहती है कि "मैं था'। जब आप सोते हैं, तो कई स्वप्न आते हैं। कई बार ऐसा होता है कि कोई भी नहीं है, लेकिन आप स्वयं मौजूद हो। वह क्या चीज़ है, जो किसी के न होते हुए भी स्वयं मौजूद है? आप गहरा नींद में सो जाते हो, गहरी नींद में तो कुछ ज्ञान नहीं होता। लेकिन जब आप उठते हैं, तो कहते हैं कि कल रात तो मुझे बड़ी जबरदस्त नींद आई, 10 साल तक ऐसी नींद नहीं आई, तो वह कौन सी चीज़ है जो बताती है कि 10 साल तक ऐसी नींद नहीं आई? इसका मतलब है कि आपके अन्दर एक और तत्व है जो नींद से भी परे है, उसे सुरत कहते हैं। वह आपके अन्दर कायम और दायम है। बस इसी बात को पहचानने

के लिए गुरु की ज़रूरत होती है। गुरु आपको तब मिलता है, जब आपके पिछले प्रारब्ध कर्म होते हैं। गुरु आपके विश्वास को पक्का करता है। आपका यह विश्वास हो जाता है कि मैं परमतत्व से आया हूं। गुरु के साथ एक और चीज़ जुड़ी हुई है, जिसे सत्संग कहते हैं। सत्संग को बार-बार सुना जाता है। सत्संग को बार - 2 सुनने के बाद उस पर अमल किया जाता हैं। अमल करने के लिए अभ्यास। सन्तमत के अन्दर तीन चीजें हैं -- सतगुरु, सत्संग और सतनाम् या अभ्यास। क्योंकि कलियुग के अन्दर नाम के द्वारा ही परमतत्व के पास पहुंचा जा सकता है। अब नाम सभी व्यक्तियों को एक जैसा नहीं दिया जा सकता है। इसलिए गुरु आपकी प्रकृति को देखकर नाम देता है। नाम के अजपाजाप से आप अन्तर्मुखी हो जायेंगे और आपके पर्दे जो अनेक जन्मों से पड़े हुए हैं, हट जायेंगे। जब सारे पर्दे हट जायेंगे, तब आपको ज्ञान हो जायेगा। ज्ञान होने से आपका जीवन सुखी व्यतीत होगा। मगर जो आपके पिछले कर्म हैं वह तो आपको भोगने ही पड़ेंगे। लेकिन यदि कोई बड़ी मुसीबत आने वाली होती है, वह कम हो जाएगी। आपकी अन्तिम अवस्था वह हो जायेगी, जो परमतत्व की अवस्था होती है. यही जीवन मुक्त अवस्था है। जीवन मुक्त कौन है ? जीवन मुक्त वह है, जिसको किसी से नफरत नहीं है, दुख-सुख में भी दुःखी या सुखी नहीं होता। इस अवस्था में जब आदमी शरीर को छोड़ता है तो सीधा परमतत्व में विलीन हो जाता है। वैसे स्वर्ग नरक, लोक लोकान्तर आदि होते हैं। मगर जैसी आपकी भावना होती है, वैसे ही आपको दर्जे मिल जाते हैं।

इस प्रकार बाहरी गुरु से अन्तर के गुरु का ज्ञान मिलता है। सत्संग से घिसाई होती है और नाम के अजपाजाप से आपके पर्दे हटते चले जाते हैं। जब सब पर्दे हट जायेंगे, तो ऐसी अवस्था आ जाती है, जिसमें नाम जपने की जरूरत नहीं रहती।

जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाए।

इसके बाद सहज समाधि की अवस्था आ जाती है। तो यह तो बात रही नाम की, जिसे आप लेना चाहते हैं। मगर दूसरी बात यह है कि आदमी नाम न ले, जाप न करे, अगर एक चीज़ को पकड़ ले कि वह एक सच्चा मनुष्य बन जाए। अब प्रश्न है कि सच्चा मनुष्य कैसे बना जा सकता है ? मनुष्य सच्चा तब बन सकता है, जब वह अपनी नियत साफ़ रखे। नियत साफ रखने का मतलब है कि किसी को नुकसान न पहुंचाए। किसी के भी प्रति बुरे ख्यालात न रखे। यदि आप बुरे ख्याल रखेंगे, तो वह आप पर ही हावी हो जायेंगे और आपको दु:ख देंगे। घर के अन्दर शान्ति और प्रेम रखो। इससे आपका मन साफ हो जाएगा और बहुत जल्दी ही अभ्यास में आप दर्जे पार करते चले जायेंगे। पहले आपको घर की duty देनी चाहिए। जब आप अभ्यास करने बैठें, तो सच्चे दिल से प्रार्थना करें कि मेरे अवगुण दूर हो जायें, मेरा मन पवित्र हो जाए। इससे आपका घर भी सुधर जाएगा और आपका लोक और परलोक भी सुधर जायेगा। बस आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूं।

सबको राधास्वामी।

परमसन्त परमदयाल पण्डित फ़कीरचन्द जी महाराज

के सत्संग 21-9-1980
का शेष भाग

(अगस्त अंक से आगे)

मैंने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी आपको समझाने की। अगर अब तुम न समझो, न अमल करो तो फिर कसूर किसका? कसूर किसका है? जो मेरी ड्यूटी थी मैंने पूरी कर दी। मैं सोचता हूं आप लोग कहेंगे कि मैं अहंकारी हूं। अपने आपको संत सद्गुरु वक्त कहता हूं। मैं अपनी आत्मा से पूछता हूं--'बे हया'। मैं अहंकारी नहीं हूं। सत्गुरु नाम है सच्चे ज्ञान का, सच्ची समझ का। इस वक्त में जिस सच्चे ज्ञान, सच्ची समझ की ज़रूरत है मैं वह बताता हूं। तो मुझे सत्गुरु बनने से सुरख़ाब (चिड़िया) का पर नहीं लग गया। मैं करामाती नहीं हो गया। बात आपको साफ़ बता दी, यह बात कैसे नहीं, कैसे है। सब कुछ, हम जानते हैं, मगर अमल नहीं करते। पढ़ो इसी कड़ी को :--

"सत्गुरु सब कुछ दीन,
देत कछू ना रह्यो।

हम ही अभागिन नारी,
सुख तज दुःख लहयो॥

गईं पिया के महल,
पिया संग ना रची।

हृदय कष्ट रह्यो छाई,
मन तजो भाई॥

तो हम मालिक को मिलने के लिए जाते हैं। जिस आदमी के मन में हेरा फेरी है, जो कपट रखता है, चार सौ बीस करता है, वह वहां जा ही नहीं सकता। सत्संगी भावें (चाहे), सारा (सारा) दिन (पूरे) पचास-पचास साल हो गए नाम जपते हुए, उनको मिला क्या? वहां तो वह पहुंच सकता है जिसके हृदय, मन, में हेरा फेरी, धोखा, चार सौ बीस निन्दा न हो। जब तक मन निर्मल नहीं है, तुम लाख कोशिश करो (कि) तुम्हारी सुरत ऊपर चढ़े, यह मुमकिन नहीं। हम लोग क्या करते हैं। आप गृहस्थियों को देखो तो सही। नाम के सत्संगी बन गए। खून [ऊंगली में] लगाकर शहीदों में शामिल हो गए। हमारा असली जीवन क्या है? भाईयों से हमारी दुश्मनी, मज़हबों में एक दूसरे के साथ दुशमनी चलती है। तो जब तक ज़िन्दगी अमल में न आए विचार, व्यवहार में न उतरे उस वक्त तक यह काम नहीं बनता और विचार को अमल से व्यवहार में लाने का क्या इलाज ढंग है? यह है किसी बा-अमल व्यवहार कुशल-अनुभवी शख्स की सोहबत, उसका

सत्संग, उसको रेडिएशन (प्रभाव तरंग)। हर दायरे में, हर जगह देखे, दातादयाल के भी देखे, सब जगह देखों, दो दो सरकल (वृत) होते हैं। एक इनर सरकल (अन्दर का वृत्त) होता है, एक आऊटर (बाहर का) सरकल होता है। इनर सरकल में जो आदमी काम करते हैं, गुरु महाराज उन पर कंट्रोल नहीं कर सकते। क्योंकि (कारण कि) वे गुरु महाराज की शार्ट कमिंग्ज़ (त्रुटियों/ को जानते हैं। बाहर में और सरकल है। क्या कहा मैंने ? (समझे) ? मैंने सरकल नहीं रखे। मेरा सरकल अन्दर है वह (ही) बाहर है। किसी की मर्ज़ी, तुम्हारी मर्ज़ी, सत्संग में आएं, तुम्हारी मर्ज़ी, मत आयो। तुम्हारा जो करता है मेरी किताब को पढ़ो, तुम्हारा जी करता है न पढ़ो। जी करता है मन्दिर में चार पैसे दे जाओ, नहीं करता है मौज करो। मैं आया ही इसी वास्ते हूं। बाबा सावन सिंह जी से मिले, कहा करते थे कि तुसों मेरी गल्ल नहीं समझदे। कोई डण्डे मारन वाला आ जाएगा। अब मैं वह डण्डे मारने वाला हूं। बिल्कुल साफ़ कहता हूं। आगे पढ़ो :--

जहां पै खिंचाई चलौं, गिर गिर पड़ौं,
उठहुं संभाल संभाल, चरण आगे धरौं।

यह, तो मैं खुद गिरता था। मुझ पर तो दया थी सत्संगियो आप लोगों की। मैं इस मन के चक्कर से निकल नहीं सकता था। जो कुछ मेरे अन्दर पैदा होता था, मैं उसको सच मानता था। जब से मुझे तुम लोगों से पता चला कि मेरा रूप तुम्हारी मदद करता है (तो मैं समझ गया

सच्चाई को)। मेरे तो बाप को भी पता नहीं होता और न मैं किसी के अन्दर जाता हूं। तो मुझे यकीन हो गया कि जो कुछ मेरे अन्दर है वह सब फ़र्ज़ी (काल्पनिक) है, कल्पना है, माया। तो फिर अब मुझ को यह मौका मिल जाता है कि मैं मन को छोड़कर ऊपर चला जाता हूं। लेकिन गिरता मैं भी रहा हूं, अब भी गिर जाता हूं। अब भी बाअज़ (किसी) वक्त कैसे-2 ख्याल मेरे मन में आते हैं--मैं आपको बताता हूं जिनको कि मैं नहीं चाहता। मगर मैं जानता हूं कि कुछ नहीं। कुछ दिन हुए शाम को मैं अभ्यास करने लेट गया। मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) शकलें मेरे सामने आने लगीं --कई किस्म की शकलें, अच्छी भी, बुरी भी। मैं जानता था कि यह फ़र्ज़ी हैं। मगर वह सीन मेरे सामने से जाते नहीं थे। फिर मैं जग पड़ा। आंखें खोल लीं। खोलने के बाद फिर मैं सीधा प्रकाश से शब्द की ओर चला गया। तब यह नजारे छूटे। इस वास्ते जो परमार्थ चाहते हैं जब तक त्रिकुटी से ऊपर ध्यान नहीं करेंगे, वे लाख कोशिश करें, वह इस मन के चक्कर से निकल नहीं सकेंगे। यह देखो, अभ्यास की बात बताता हूं। जो शख़्स सहस्रदल कमल में ध्यान करने वाला है, त्रिकुटी में ध्यान करने वाला है, अगर वह यह चाहे कि उसके मन के चक्कर में जितने ख्याल उठते हैं, वे उसे तंग न करें, यह नहीं हो सकता, यह ना-मुमकिन है। जो आदमी गुरु रूप का ही ध्यान करता है, राम का या कृष्ण का, या किसी किस्म के रूप का और वह यह चाहे कि उसका मन उसको तंग न करे, यह ग़लत है। मन का काबू में आना, सिवाए शब्द और प्रकाश के साधन से, बिल्कुल नामुमकिन है। यह परमार्थ की बात बताए देता हूं जो अभ्यासी होंगे (उनके लिए)। मगर यहां हर एक आदमी इतनी जल्दी पहुंच नहीं

सकता। नहीं क्यों ? मन के अन्दर दुनिया भर की ख्वाहिशात हैं। इस वास्ते मै दुनिया वालों को नाम नहीं देता। और यह मैं आज हौसले स कहना चाहता हूं कि आज दुनियां (दारों को नाम देना उनको ज़हर देना है। आप यह सोचो कि ऐसा क्यों ? जब तुम अभ्यास करोगे, जो कुछ तुम्हारे सब कान्शस माईंड (उपचेतन मन) में वासना है, यह बढ़ जाएगी, क्योंकि अभ्यास करने से, तुम्हारा अभ्यास विल पावर संकल्प शक्ति) बढ़ने से, जो कुछ तुम्हारे सब कान्शस माईंड (उपचेतन मन में है, वह बढ़ जाएगा। कामी ज्यादा हो तो ज्यादा कामी हो जाओगे। लालची हो तो ज्यादा लालची हो जाओगे। धोखेबाज़ हो तो ज्यादा धोखेबाज़ हो जाओगे। नेक हो तो ज्यादा नेक हो जाओगे। यह मैंने आज़माया है। मैं मिसाल दिया करता हूं जबलपुर वाली औरत की। वह त्रिकुटी में अभ्यास किया करती थी। उसके तीन बच्चे थे। मेरे पास आई। कहने लगी, "दाता दयाल, मेरे बच्चे मुझे बहुत तंग करते हैं। उसको कहो मेरे खाविंद को कि उनको संभाला करे। मैंने पूछा तेरी सास है, ननद है ? कोई नहीं उसने बताया। खाविंद उसका इन्स्पैक्टर था। आठ बजे सुबह जाता. नौ बजे रात को आता था। पण्डित वली राम (उस समय मेरे पास) था। मैंने उसको कहा, "मेरा इल्म कहता है कि इसके तीनों बच्चे मरेंगे। वह त्रिकुटी में अभ्यास करना चाहती थी और उन बच्चों की तकलीफ़ से बचने की ख्वाहिश उसके दिल में थी। उसकी ख्वाहिश पूरी होनी चाहिए थी (अभ्यास के फलस्वरूप)। इसलिए नौ महीने में उसके तीनों बच्चे मर गए। और मैं डर गया।

मैंने कान को हाथ लगाया। मैं उस दिन के बाद से किसी को नाम नहीं देता। दुनिया साचती नहीं है। मैं डिग्री होल्डर (प्रमाणित योग्यता सम्पन्न) हूं। एक दाता दयाल की तरफ़ से। लोगों को सोचना चाहिए कि यह बूढ़ा क्यों नहीं नाम देता। इसलिए नहीं देता कि जीव के अन्दर जिस किस्म की बुराईयां हैं तो जब वह अभ्यास करेगा तो वे बुराईयां और बढ़ जायेंगी। इस वास्ते मैंने इस बात को पर्दे में रखा क्योंकि आजकल तो जितने लोगों को नाम दिलवा दो पुन्न गिनते हैं। आप स्वयं किसी को नाम मिला है, या नहीं है दूसरे को घेर करके बकरियों को कसाई के कब्ज़े में देने की तरह ले जाते हैं। नाम दे दो, नाम दिलवा दो। मैं डर गया। फिर मैं गया, आ गया। बारह, पन्द्रह साल हो गए। वहां राय सालिगराम जी की ज़ाते पाक की प्रेम वाणी में वहां लिखा हुआ है--'जो आदमी के मन में गन्दे ख्याल आते हैं, उसको रोक नहीं सकता, या उनको रोकना नहीं चाहता, उसको अभ्यास बिल्कुल नहीं करना चाहिए, वरना उसका अज़हद (सीमा से) अधिक नुक़सान होगा'। एक पैरे में दो दफ़ा लिखा हुआ है। मैं बड़े शरेआम कहता हूं जब मेरे सामने आयेंगे गुरु लोग सारे। आजकल जो नाम दिया जाता है आम दुनिया को तो मीठा ज़हर दिया जाता है। सब से पहले जीव को काफी सत्संग करना चाहिए ताकि उसको पता लगे कि हमने अपनी वासनायें कैसी रखीं हैं। और यही बात हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि गायत्री का मन्त्र अगर शूद्र सुन ले तो उसके कान में सिक्का भर दो। शूद्र वास्तव में वह नहीं जो समाज द्वारा नीचे माने जाने वाले लोगों के घर में पैदा हुआ। जिसका मन गन्दा है चाहे वह

ब्राह्मण है सन्त माना जाता है, वह शूद्र है। तो जिनके ये मन गन्दे हैं, यह नाम उन को खा जाएगा। हां अगर उनके मन गन्दे हैं और मन की गन्दगी दूर करने के लिए वे नाम जपते हैं तो उनको मन की गन्दगी दूर हो जाएगी। यह है राज़ (रहस्य)।

"चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुद्धि लाइये।

मैं तो ज्ञान दिए जाता हूं दुनिया को। दुनिया उसे सुने या न सुने, मुझे तो कोई पता नहीं। मेरे ज़िम्मे तो एक ड्यूटी थी --"फ़कीर चोला छोड़ने से पहले तालीम बदल जाना।" सो मैं तालीम बदल चला मगर यह दावा नहीं करता कि जो कुछ मैं कहता हूं यही फाइनल है। हो सकता है मैंने जो कुछ समझा वह सारे का सारा ग़लत हो। हर शख्स के लिए एक ही राय नहीं है। मैंने दाता दयाल की किताब भी पढ़ के सुनाई थी मास्टर मोहन लाल को। वह कहते हैं, यह सब दरजे (दरवाजे) सब पर नहीं खुला करते ना! जैसी-2 जिसकी प्रकृति है वैसे वैसे दरजे खुलेंगे। मंज़िले मक़सूद पर सब पहुंच जायेंगे। मंज़िले मकसूद क्या है? शांति, परम सुख, बे वहलीयत (?) बेख़ौफ़ी, अभयपना (बिना किसी डर से)। यह है हमारा मंज़िले मक़सूद। बाक़ी जो कुछ है वे रास्ते हैं। संतों ने वाणी में लिख दिया --'संत जाव को बन्द गाड़ी में ले जाते हैं, ऐसा लिखा है। वह वक्त और था, यह वक्त और है। तो आज मैंने बहुत कुछ आप लोगों को कह दिया, कोई कसर बाक़ी छोड़ी नहीं।

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड डोगरी, वरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचलप्रदेश

परम सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज

होशियारपुर
12-10-90

मेरे परमप्रिय आत्मांश लाल

राधास्वामी

परमदयाल जी सहाई।

आपका बहुत ही प्यारा पत्र प्राप्त हुआ। मैं कई दिन से उसी मस्ती में पत्र की धार के द्वारा आपसे सम्पर्क करने की इच्छा कर रहा था। यहां आने के तुरन्त बाद भी मैं आपको पत्र लिखना चाहता था किन्तु मैंने सोचा कि दशहरे के अवसर पर कुछ ही दिनों में देहली में मुलाकात होगी। मैंने यहां 21 Sep. को पहुंचा। दुपहर को जालन्धर में सत्संग देकर उसी शाम को होशियारपुर पहुंच गया। यहां पर मासिक सत्संग के लिए भीड़ लगी हुई थी। 23 को सत्संग देने के बाद भी मेरा यही निश्चय था कि 26 Sept. दुपहर का सुपरफास्ट में रवाना होकर उसी शाम देहली पहुंच जाऊंगा। सीटें भी रिजर्व हो चुकी थीं। गाड़ियां

सामान्य रूप से चल रहीं थीं। 25 Sept. प्रात:काल मौज आई कि देहली न जायें। टैलीफोन से जज साहिब को सूचित कर दिया कि रास्ते में सम्भवत या रुकावटें होंगी और सत्संगी भी नहीं पहुंच सकेंगे। इसलिए माता जी से मेरा सत्संग पढ़वा दिया जाये क्योंकि माता जी पहले से वहां मौजूद थीं। मेरे इस निर्णय को बाद में सभी ने अच्छा माना। 26 दुपहर के बाद ही रास्ते बन्द हो गए। सड़क के द्वारा जाना खतरे से खाली नहीं था। फलस्वरूप मोदी नगर में जहाँ मुझे 27 Sept. सत्संग देना था, दंगे हुए, कई मौतें हुई और करफ्यू लग गया। अच्छा ही हुआ कि मैं वहां नहीं गया। इसी मौज के वश में आप दिल्ली नहीं पहुंच सके न कोई और राजस्थान से पहुंचा। डेढ़ दो सौ सत्संगी अधिकतर दिल्ली के पहुंचे। दोनों दिन मेरा सत्संग पढ़ा गया और कुछ जज साहिब ने भी कहा। सभी सत्संगियों ने यही कहा कि मेरा न आना शुभ था। आपका वहां न जाना स्वभाविक था। अब 4 नवम्बर को रविवार के दिन सल्वान पब्लिक स्कूल में सत्संग रखा है। फिर भी आप परिस्थितियों को देखते हुए, मौज के अनुसार आइये। यदि परिस्थितियां ठीक हुई तो आप और मैं दूसरे दिन बिलारी जायेंगे किन्तु इसकी घोषणा नहीं करनी है। नवम्बर में आप अवश्य मिलेंगे और आपको परमानन्द का अनुभव होगा।

सुरत शब्द मेला भया,
मुख की हाजत नांह।
लाल ईश मेला भया,
लेख की हाजत नांह।

मौज मौज मौज। मेरी ओर से आपको, आपके परिवार को और सभी सम्बन्धित परिवारों का हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी।

आपका फकीरमय
मानव

होशियारपुर
22-12-90

मेरे प्यारे लालाँश

राधास्वामी
परमदयाल जी सहाई !

आपका बहुत ही प्यारा, मस्ती से ओत-प्रोत पत्र मिला। मुझे पूरी आशा है कि सत्संगियों को आपके अनुभव बांटने से अत्यन्त लाभ होता होगा। यद्यपि साधारणतया, सत्संग में ऐसा लगता है कि आप बाहिर्मुखी हो, तथापि वास्तव में ऐसा नहीं होता। सहज अवस्था में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी का भेद समाप्त हो जाता है। जब कभी थोड़ी देर के लिए यह ध्यान आता है कि सत्संग में क्या कहा जा रहा है, तो ऐसा लगता है कि हम अपने आपको सत्संग दे रहे हैं। बात तो वही रही कि वह आप ही सद्गुरु है और आप ही सत्संगी है। वह आप ही सत्संग है और आप ही सतनाम है। दातादयाल जी ने ठीक ही कहा है।

किस भरम में है पड़ा,
निर्भ्रान्त चित से शान्त हो।

आप मैं हूं योगयुक्ति,
आप शब्द अभ्यास हूं ॥

आप इसी अवस्था में रहने के कारण सत्संग देना या न देना बराबर है। क्योंकि सत्संग दिया नहीं जाता, वह तो हो हो जाता है जैसे प्रेम किया नहीं जाता, हो हो जाता है। ऐसा लगता है कि आपको मेरा एक पत्र नहीं मिला। जिसमें मैंने आपको दिल्ली आने के लिए लिखा था। क्योंकि मैं 29 नवम्बर को आपको अमरिका से आए हुए सत्संगियों से मिलाना चाहता था। इसमें भी कोई भलाई है।

मैं चाहता हूं 20, 21, 22 जनवरी को आप हनुमन-कुण्डा बसन्त सम्मेलन पर मेरे साथ जायें। आप इस पत्र के मिलते ही उत्तर भेज दें। कुछ दिनों से गले और जुकाम के कारण शरीर अस्वस्थ चल रहा है। और प्रकृति जबरदस्ती विश्राम दिला रही है। चिन्ता की कोई बात नहीं। मैं सिवाय हनमकुण्डा के और कहीं आन्ध्रा नहीं जाऊंगा।

मेरी ओर से आपको और आपके परिवार को और सभी सत्संगियों को हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव

होशियारपुर
29-10-90

मेरे पूर्णांश लाल

राधास्वामी

परमदयाल जो सहाई !

तुम्हें उत्तर देने की आवश्यकता तो नहीं समझता, लेकिन जब तक सुरत शरीर में है और जगत् कल्याण के लिए जगत् में है, तब तक पत्र की भाषा से, जो वास्तव में वाणी का प्रवाह है, तुम्हारे और अपने स्वरूप को मिला देने का परमानन्द जरूर प्राप्त करना चाहिए। इस पत्र में मैंने जो तुमको सम्बोधन दिया है, उसमें तुम्हारे प्रेम से ओत-प्रोत अनुभव में सने हुए साकार और निराकार की भक्ति का भेद खुल ही गया है। मैंने तुम्हें अपना पूर्णांश क्यों कहा और इस पत्र में आपके स्थान पर 'तुम' शब्द का प्रयोग क्यों कर रहा हूं ? अह अह अहा ! मेरे प्यारे लाल तेरी लाली क्या है ? यह वही लाली है जिसके बारे में कबीर साहब ने कहा है :

लाली मेरे लाल की,
जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी,
मैं भी हो गयी लाल ॥

यह लाली प्रेम ही तो है और प्रेम ही ईश्वर है। अगर तू लाल चन्द है और मैं ईश्वरचन्द्र हूं, तो तुझमें और मुझमें भेद कहां रहा। लेकिन इस आत्मीयता का अनुभव, इस उन्मुनी परम सुख की अवस्था का निखार केवल तभी हो सकता

है, जब परमतत्व निराकार और साकार से परे परमपुरुष दयालपुरुष दो धाराओं में बहता हुआ, ईश्वर और लाल के साकार रूपों में इस जगत् में आया और जगत् कल्याण के लिए ही दुःखी जीवों को परमपद पर ले जाने के लिए, इस साकार लीला को दिखाकर साकार में ही निराकार का अनुभव और निराकार में साकार का अनुभव कराया। न मालूम मैं क्या लिख गया लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि जिस धारा का अनुभव इन पंक्तियों में लिखा जा रहा है, उसी धारा का तुम रसास्वादन इसलिए ले रहे हो क्योंकि तुमने साकार से सच्चा प्रेम करके उस सर्वव्यापी आन्तरिक रूप को समझ लिया है, जिसके बारे में स्वामी जी ने लिखा है और तुमने जिसका अनुभव किया है और जिसके कारण जीव का 'उभार' हो जाता है। तुमने अपने अनुभव से सद्गुरु भगवान श्री कृष्ण की वाणी जिसमें उन्होंने साकार रूप वाले भक्त को उत्तम माना है, इस छोटे से पत्र में उस भेद को खोलकर यह साबित कर दिया है कि राधास्वामी मत सब से ऊंचा इसलिए है कि उसमें निराकार और साकार से परे जीवित जागृत सद्गुरु से यह आशा की जाती है और कहा जाता है कि :

दे खोल दृष्टि तुझे पहचाने।
दरस परस करके तुझको माने।
उदय हों घट सूर चन्द्र तारे।
दयाल दाता कृपाल स्वामी॥

अब मैं यह नहीं कह सकता कि तू मैं है या मैं तू है। लेकिन यह ज़रूर कह सकता हूं कि मैं लाल चन्द हूं और तू ईश्वर चन्द्र है। ज्ञानी तब तक अधूरा है, जब कि वह

PURNADAYAL RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY

प्रेममय होकर अपने राधास्वामी व्यापक रूप को नहीं पहचानता। तू पहचान गया, जान गया और मान गया। बस-शान्ति।

सबको राधास्वामी

तुम्हारा फ़कीरमय
मानव

होशियारपुर
25-8-91

मेरे आत्मांश लाल चन्द जी

राधास्वामी

परमदयाल जी सहाई !

आपका ज्ञानमय, प्रेमभरा 7 अगस्त का पत्र मिला। कई दिनों के बाद आज दौरे से आने के पश्चात् आपका पत्र मेरी नज़र में आया। यूं तो उसके उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है लेकिन व्यवहार की दृष्टि से अपनी प्रतिक्रिया को लिखवा रहा हूं। बावजूद परमतत्व में विलीन होने के, जब तक शरीर है और चेतना है जुस्तजू अचेतन रूप में होती रहती है। चश्मेवाहदत में रहने वाला अपनी जगह ठीक है, लेकिन दुनिया उसको नहीं समझ सकती, दुनिया को समझाने के लिए और गुरु ऋण उतारने की दृष्टि से उनको चिताने के लिए अपने अनुभव को

बांटना पड़ता है यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि आप सद्गुरु के मिशन को पायातकमोल तक पहुंचाने के लिए, विशेषकर जयपुर में सत्संग देने के लिए जाते हैं।

आशा है कि मेरा पत्र भी आपको मिल गया होगा। यहां पर सभी आपको याद करते हैं और अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं। आप दशहरे पर देहली अवश्य आना। मैं 16 अक्टूबर दुपहर तक सलवान पब्लिक स्कूल पहुंच जाऊंगा।

आप चुरू को ज़मीन के बारे में हमीदा बेग़म से बात करें वह कुड़राराम से नाराज़ है, क्योंकि उसने उमीदा का चुनावों में विरोध किया था, लेकिन वह आपकी इज्ज़त करती है, वह मुझे दिल्ली में मिली थी, इसने कहा था कि अगर कैप्टन लाल चन्द जी इसे सारी बात समझा दें तो वह अफ़सरों से कह करके मन्दिर की ज़मीन को Regularise करा देगी।

आशा है कि जब आप चुरू जायेंगे या जयपुर जायेंगे, तो उसे मिल करके सारी बात समझा देंगे। ज़मीन की फाइल महाराज कृष्ण से ली जा सकती है, हमीदा जयपुर भी आया करती है, इसलिए आप और महाराज कृष्ण दोनों उससे मिल सकते हैं। वह चुरू भी रहती है जब आप चुरू जायें, तो उससे सम्पर्क करके उसका जयपुर का पता ले लें। यह व्यवहारिक कार्य सदगुरु का केन्द्र बनाने के लिए है, इसलिए यह भी अध्यात्मिक साधना का अंग है। मेरी ओर से आपको आत्मियता और घर वालों को तथा सभी सत्संगियों को हार्दिक आशीर्वाद और

राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Sunday, 10th October, 1993

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

Inspiring Biographical Events in the life of

Data Dayal Maharshi Shivbrat Lal Varman Ji Maharaj

(3)

People relate the stories of ghosts, but I never believed in them. Because the status of the people by whom I had been trained was such that they declared the existence of the ghosts and spirits as a mere illusion and hallucination. I also held this view. I made fun of the people, who talked about ghosts and considered those people to be insane. But in my own life I had the occasion to see ghosts with my naked eyes. Once I also had a dialogue with a ghost. Since then I do not deny their existence. Now inspite of strong arguments given to me against their existence, I may not refute them. The opponents are true, so am I. The opponents have never witnessed the ghosts with their naked eyes, so they

are justified to say that they don't exist. But I have seen ghosts. So I am justified not by their opinion, but on the basis of my own experience. I have heard many stories about ghosts and spirits. Possibly they may be false or may be true. I don't hesitate in telling my true experience verbotim to those who honour truth. Even then I do not insist that people should believe in what I say. However, I think it necessary to relate my personal experience, so that other people, having similar experience may be able to arrive at some tangible conclusion after comparing their own experience with of mine.

I left college and cane to Chunar as the head-master of Church Mission School in 1888. Chunar is a historical town in Mirzapur district. There is an ancient Port of the Hindus, which is intact even now and is worth seeing and wonderous place. The fort had been constructed by cutting it out from the rocky part and a little less than half its area juts out in the river Ganges. There is the tomb of the great Yogi Bhartrihari in the center of the fort. Bhartrihari was the older brother of the great Maharaja Vikramaditya long ago. It is said that he came to Chunar after renouncing his kingship.

He practiced penance for a long time in this

fort and ultimately went to eternal trance. Hindus mostly come to visit this tomb and believe that King Bhartari is living in body even today. However, this a matter of their faith. There is also a temple to the north of the city, which is dedicated to the great Yogi and writer King Bhartrihari. Possibly this city might have been the center of religious activities of the Buddhists in their prime period, or might have been a Buddhist monastary. It is evident from the fact because many Bnddhist statues were discovered, when the Southern wall of the fort collapsed. There are many verses in Pali language inscribed at the bottom of the images. The photographs of these images and the verses were taken in my presence, with the permission of late Seth Hanumanprasad Sahib of Chunar, which were sent to Asiatic Saciety of Bengal Calcutta for further investigation and research. It is therefore evident that this fort existed during the period, when Buddhism flourished in India.

Hindus says when the dwarf Bawan) incarnation of God tricked King Bali his first foot (Charan) fell at this place that is why the fort is cal'ed Chunar, The Sanskrit version is Charnar meaning first foot. It is astonishing that this fort has the shape of a foot. The southern side is the heal and the nothern portion

approximately resembles the toes, some part of which is merged into the water of the Ganges. This event is mentioned in the Puranas. Those facts help us to conclude that the fort of Chunar is much older than the time of the Buddhists.

In spite of being so old it is worth seeing. The canopy of the marriage of Adal the brother of Alaha the well known Rajput is still present in this fort. Chunar was a province in the Muslim period. During the earlier administration of the English administration, Chunar was the headquarter of Mirzapur district.

I arrived in Chunar and was surprised to see there were the graves of some Muslim martyrs in the houses of the Hindus. There was the grave of such a Muslim martyr, in the very first house which was given to me by late Babu Hanuman Prasand Ji. The Hindus and Muslims usually came to place wreaths of flowers and light earthen lamps on that grave every thursday in the evening. This house had been lying unoccupied earlier. It was my good luck to occupy this house, because I was fearless and did not believe in the existence of ghosts and spirits. Even though people advised me to take care of the grave, which

I did, yet my younger brother used to sit on that grave and play very often. In spite of this I neither saw any ghost in that house, nor was not harmed during my stay in that house. After a year, I left that house and rented another situated about two hundred yards away from the fort. This house was more comfortable. The landlord of that house was a businessman named Anantu Pasi. The people of Chunar generally believed in the existence of ghosts and spirits, because of the graves in every home. I had a unique experience in that house for the first time. I am stating the same below.

This happened in 1889, or 1890, I don't remember the exact time. Myself and my younger brother Surya Narayan Singh who was only nine years old lived in this house. The servants would leave the house in the evening. By chance on the day on the incident he had gone to the Tehsildar, who was my relative. His name was Munshi Ayodhya Prasad. He was a very cultured and sociable person of a gentle. Nature such sublime and moral persons are very rare in this world. His son dear Bhagwati Prasad was my pupil. He and my brother Surya Narayan were peers. Bhagwati's mother loved Surya Narayan very dearly. He usually accom-

panied Bhagwati Prasad to his home and stayed with him for days together.

It was the month of March, the weather was mildly cold, but pleasant. After the evening meals I was relaxing alone on the second floor. Because of being alone, I don't remember, how long I enjoyed sound sleep ? Possibly I slept till 2 a.m. Suddenly I woke up and felt like going to the toilet, After easing myself and washing my face I lay down again on my bed, The lamp was not lighted, because I cannot sleep even in mild light, on account of my tender nature. But the moonlight was bright on the outer balcony of the second floor. I was resting on the pillow with my arm under my head, when sudden-my room became lighted. I don't know the cause of it. Soon after this I heard the tinkling of anklets, as if some woman was coming up through the stairs. I don't know why I had no fear at that time otherwise with unusual happenings at night, a normal person is Stunned. I was about to guess as who the visitor was, when a beautiful lady clad in fine dress and laiden with ornaments came in front of my bed, stopped there and saluted me. Among the Hindus usually the ladies do not salute any male, nor is there any such propriety in Hindu tradition. The reason is that the Hindus regard woman as Laxmi,

the goddess of wealth and Shakti, the goddess of power. As for as I know Hindu ladies never fow down to anyone excepting a monk and God besides their husbands. This custom was honoured in the Past, with a view to maintain the cradition. But modern civilzation is depriving us of our culture and is also destroying the sublime status of women. I was surprised and looked at that lady carefully. After saluting me she stood before me in peaceful silence.

I asked, "Who are you ?

That lady told me the names of her husband and father, both of whom belonged to respectable Muslim families. I was surprised to hear their names, because I hardly met these gentlemen once or twice. ;ad neither met them at their residence or at mine. We were only mutually aquainted. This much was our relationship. The woman was dressed like Hindu ladies. The Musiim women of Banaras and Mirzapur etc., usually wear sarees and it is very difficult to distinguish them from Hindu ladies.

I said, "P,ease listen to me. You are the daughter and daughter-in-law of respectable family. I am a single male. Normally no woman visits me. I am a male what will people think about me. You

are a woman, who lives behind the veil. It is not proper for you to come to a strange male alone. If someone were to notice it, it would be unbecoming."

At this she laughed boisterously. At that time I was under such an illusion that I thought her to be a living person even though I knew that nobody could come up to me with locked door of the first floor. I was in a tipsy state and I did not have any such idea that the visitor was a ghost. My eyes were opened and I was seeing her face to face. At tha time I did not even think as to how my room had been highted miraculously. Her laughter made me wonder about the situation. Women are usually shy and stay behind the veil. Afterwards I came to know that woman was the embodiment of modesty, during her life time. Her father was a Sunni Muslim and a big government officer. Her husband belonged to a respected family of Shia Muslim community.

After her laughter, I was silent for a few minutes. I soon asked her, "After all there must be some reason of your coming to me? With what motive have you come?"

The woman presented the child whom she had

in her lap to me and said, "Please she the child,"

I said, "I have seen."

The woman, "What do you conclude after seeing her ?

Myself: "Her colour has turned pale. She is beautiful but appears to be sick."

Woman: "She is my daughter. She is seriously ill. I have come to you to help me."

Myself: "What can I do ?"

Woman :---Tomorrow morning you may call her father and advice him that he should not be so careless about his child. She is seriously ill. Her maternal grandfather is also ignoring her. If she is not properly treated immediately she may die within a week. She cannot be treated immediately. So I suggest a remedy for the time being. Which should be followed for three days and on the fourth day she should be put under the treatment of an efficient doctor, Hakim or Vaidya. The remedy is that she should be made to lie down naked at ten or eleven a.m. in bright sunlight. Three or four drops of sessame oil should be poured in her navel. After the third day they may do what-

ever they like.

Myself :--"Can you not do it yourself."

The lady burst out in laughter again and I was flabber ghasted.

Myself : -If you cannot do it yourself you should tell your father or husband to do it. This is a simple matter.

The woman laughed again and I was puzzled.

Myself, "After all there must be some reason your coming to me. Why don't you state that clearly ?

The woman smiled and said, "I have tried everyone, but none of them was worthy I turned towards you. If you tell my husband and father, they will listen to you and will immediately apply the remedy. If someone else tell them they would not listen to him. They will turn deaf ears to others.

Woman :--"Please do not forget it.

Myself :--"Is tha all or. Do you have to say something more ?

Woman :---"That is all I wanted you to do for me."

Myself :---"Now please go away. Who knows somebody may see you here.

At this she laughed loudly again and walked towards the stairs after saluting me. I continued to watch her. I heard the gingling of her anklet as she set her foot on the first step of the stair. The light vanished. I was in a fix and said, "Oh God ? What was all this ?"

The sun was about to rise, the crows were cawing neither that woman, nor her daughter could be seen. But I was extremely happy in mind. I had never experienced such a joy in my life. I deeply thought in my mind and came to the conclusion that I had been in altered state of consciousness and that noble soul had appeared to me in apparition. I was in youthful age at that time, but I had keen longing and interest in Sufism that is why I was not unaware of the state of altered state of consciousness.

I couldn't sleep afterwards. After morning bath I sat down for meditation for sometime. It was a bright day in a short time. The servant came I cooked meals myself, because I was very particular about the purity of meals and especially careful not to allow anyone else to cook in my kitchen. After eating meals I started for school. It was early yet.

The school peon had not yet arrived, so the door was not opened. One of my students Mohammad Shafi had opened a pharmacy named Medical Hall, just opposite to the school. I went to his store sat down on a chair and began to glance through a book. Possibly I would have forgotten whatever happened last night. But suddenly I saw the husband of that noble woman, walking towards his home with a stick in his hand. I looked at him and was reminded of the event of last night. I called him myself. He came to me saluted to me and sat down on the other chair lying near me. I asked him, "Where have you been ?"

He said, "I am sick of suffering from tuberclosis and had gone to Nenital under the advice of the doctor with a view to be healed. I returned only last night."

Myself, "Presently I have troubled you for a special purpose. I have to convey a message to you. You are highly educated English knowing person. I am afraid that you may not make fun of me by thinking that I am relating a dream to you."

He :-"Please go on, I will listen to you carefully."

I related to him the events of last night verba-

tion and continued to observe carefully his response to my report to the dialogue. He was no doubt listening to me most attentively.

After hearing my whole story he said, "In fact, my daughter is exactly very serious as described by you, because she is mostly sick, therefore her maternal grandfather has become indifferent to her. Let me go, I will apply the right from today."

After saying this he started for his home and acted upon the advice of his wife conveyed to him. He applied the oil for four days. On the fourth day he himself came to meet and thank me. He said to me, "The oil suggested by you saved the life of my daughter."

Myself :--"Let me know what was the effect of the oil ?

He :--"First day eight worms, the second day four worms and the third day two worms were excie-ted from her. On the fourth day also. I made her lie down on the ground and put ail n her navel, but that day no worm wa excreted. She is feeling much better. Now I will get her treated by a physician.

After this he often met mes and liked the ideas of Sufism. I don't know whether he is now alive or not, because I left Chunar long ago. I myself did

not know that the use of sessame oil was the remedy for releasing the worms from the stomach. I had never seen that woman when she was living. After this event I came to know that she had died, and that many children die to the worms in the stomach. I underwent this experience recently. My niece Chunman Devi died of this serious disease two months ago. She was the daughter of Shri Surya Narayan.

This was my own first life experience of meeting a I ghost ? had published this account in the noted English Journal entitled Spiritual Magazine of Calcutta in 1905, and now I am publishing it in Vaigyani, so that others may know it and comment on it appropriately. I had many similar experiences, that is why I cannot deny the existence of ghosts.

(Journal Vaigyani June, 1915)
(Subject Ghost for unusual event)

THE LEVELS OF THE YOGA OF LIGHT AND SOUND

H. H. Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj

Disciple :--I agree that if all the members of a family, or a particular society, or a nation, do not care for the feelings of others and continue to fulfill their individual selfish desires, that family, soeiety, or nation, will be disorganized and disintegrated as is the case with our own nation today. I agree that discipline and self control are the necessary ingredients of a democracy. But the question is how to promote them.

Faqir :--Mutual sympathy, selfless service, the spirit of self-sacrifice, and being happy in the happiness of others, are necessary for a democracy in the same way as it is necessary for parents to tolerate all kinds of hardship for the happiness of their children. When such an atmosphere is not prevalent in a society or nation, even democratic government cannot

bring peace. Because our youth and the sentimentally revolutionary segment of our society today are discarding discipline and self-control as a way of life, chaotic conditions have arisen and the future takes an ugly shape. When the nation is tortured by this revolutionary segment too far, then people will naturally long for peace and harmony. For the fulfillment of people's longing, nature will arrange that a new saviour will come to bring about changes. The virtue of selfcontrol and piscipline will be established again. Revolutionaries will listen to a fresh voice and will allow his lead.

Disciple :--But when will this occur ?

Faqir :--This can occur only when people have an overwhelming desire for peace and harmony, following a period of destruction and calamity. No-one can know the exact time of the coming of the perfect Master.

Disciple :--But still I doubt. I recognize that the end of an undisciplined and unguarded person is terrible, but he will never admit that he is wrong because of his false ego. In the same way, the evil effects of the selfish sentiments of nations lead to the destruction which we have witnessed during two great World Wars. Unfortunately those nations concerned

still think that their philosophy would be beneficial for the future Will the selfish thinking of our leaders and people not lead to the destruction of the country ?

Faqir :--On the basis of the Religion of Saints, whic directs an individual to turn the mind towar.. good thought, all potentialities of the mind should be given full opportunity to be actualized If mind is inclined toward the higher ideal, life becomes richer and happier. The philosophy of the Religion of Saints does not believe in suppressing desires, because that suppression is very harmful. Since mind is never without action, even for a moment, if it is directed toward good and positive thought, life is enriched. The contemporary selfish democratic system will create many trouble and problems. People will suffer but eventually the path will open. The new generation will reform the evils which are bound to come when their thoughts are directed toward the betterment of society ins ead of their own gain.

Disciple :--But how can a single person lead the world ?

Faq : Your interpretation of one man's leadership is misconceived. What I mean by one ma 's leadership is that there will be one principle, inspired

by proper sentiments which is bound to bring about discipline and self control. The spread of that practice sincerely will bring peace to society, resulting in peaceful administration of the world.

Disciple :--Not only you, but everyone, praises the greatness of a perfect Master. Why is this such a universal concept ?

Faqir :--A perfect Master is the climax, the last rung in the ladder of the manifestation of the Supreme Being, who is called the Sat, or essence, in its real original nature. When a current from that source manifests itself in the human form, such a manifestation is called the perfect Master. Although every individual is human (Manav) yet the differs from another human being mentally and physically. A perfect Master lacks nothing of the perceptions and feelings, from the physical state to that of the Satloka, and all his mental and physical faculties function perfectly. Right from his birth, there is no deficiency in him. Imperfect persons become perfect in his association. If a person is prejudiced, or derides another religion, or holds jealousy or hatred toward anyone, it is because of the deficiency of his perception. Some may be bigoted, others self centered, all are imperfect, wtih

some lack at the core of their inner potentiality. The person who is born a eunuch has an imperfect sexual center. The person born blind has an imperfect center of vision. But all mental and physical centers of a perfect Master are wholly without deformity or lack from his conception. A person with imperfections of a physical or mental nature has difficulty reaching a state of harmony. The perfect Master is able to lead all others because he knows all physical and mental constructions in each individual through his own perfection.

There are different centers within every person, where different feelings are experienced. A person with sixteen perfect faculties is called a perfect Master. A perfect Master can control the feelings of every center. He is a neither Hindu, nor a Muslim, nor an adherent to any particular religion or sect. He teaches the religion of humanity and lays down the foundation of Truth. Radhaswami Dayal, Kabir, and Guru Nanak, were such perfect Masters. The teachings of such great persons, when followed, are capable of bringing peace to the world, for such a one is free from all prejudices, a true lover of humanity. He is not hungry for wealth or power, but is the emperor of emperors. Such great Masters appear from time to time, according to the

needs of a particular age. I believe that the great personality who is expected in the near future shall guide the world according to the needs of the time and preach humanity for the benefit of humanity.

Disciple .--Swami Ji Maharaj has said that the saints are the creators of God. What does that mean ?

Faqir :--Yes, the saints are creators of God. When I say our real nature is Pure Being, what does it mean ? It means that It is invisible, unfathomable, unnamed and beyond all qualities. God, and Supreme God, are the names of the concentration of gross matter. Similarly, the concentration of subtle matter in a particular form is designated Brahman, the Absolute, and Parbrahman, the Supremely Absolute. The concentration of the most subtle form of matter is called the Satloke, the region of Truth. All these are the emanations from our Pure Being and remain under its control. They come into existence from It, but It is Itself above all these existent entities or qualitative states.

Disciple :--Frequently the followers of the Radhaswami Faith hold that the current of the departed Master enters into his chief disciple. Is this

true ?

Faqir :--Actually, such persons are ignorant and not aware of the Reality. The Truth is that the current referred to means the thought or mission for which a perfect Master descends on this earth. There is no doubt that he does leave his impressions on his lovers and devotees, but not that he gives them something concrete. On the contrary, his thought is that which is transferred to another person. However, people believe that current stands for the pure Soul of the Master which is supposed to enter in o the body of his chief disciple. Since the thought of the Master influences others, the disciples foster that thought with great force and spread it in some form or other to carry on the mission of their Master. Those devotees tend to spread only one aspect of their mission, neglecting the others. Then, when all aspects are not taught, it is impossible to reach people universally.

If you talk about the path of intuitive knowledge, Jnana Marga, with the follow of Bhakti Marg, the path of devotion, he will not understand. Similarly, to impose the path of devotion, or the path of action, on the follower of the path of intuitive knowledge, will be a failure.

I believe that whatever the path of the saints being followed, one and the same current of the Master is at work.

What is that current ? Some may consider me prejudiced, since most people are so entangled in the illusory world of name and form that they are closed to the Truth, but I believe that current is Radhaswami. The human soul cannot attain peace and serenity without understanding the essence of Reality, realized through personal inner experience and spiritual discourses. It is not difficult to undertake spiritual practice, but man's mind is full of conflicting thoughts and Kaal, or time, predominates, and the aspirant cannot grasp the central Truth. Even the Yogis, those great practitioners of all types of meditation, have been influenced by the spatio-temporal, ephemeral, external, transitory visions, and have not attained highest Reality.

Hence it is my wish that everyone should understand the secret of Reality as it is described in the book, Sarbacchan. The more I wandered in my search for Reality, the stronger was my desire. It became more and more intense each day but eventually it ceased. In this book I have tried to express the in-

expressible and describe the indescribable as I lose myself in the Reality. The misperception which prompted me, you, and the world, to play this game of life, in which the univertes, planets, and solar systems, are engaged, is called Kaal time. The creative thought of the Ultimate Reality results in the cosmos whose movement is influenced by that Supreme Being.

In actuality, when our temporal thought changes into thoughtless form, which is eternity, what remains is "silence", "peace", which is our original Being. One among hundred of millions of people will understand this secret and find its core. But whosoever understands it becomes silent.

Supreme Master, my obeisance. All thoughts, desires, and longings have ce sed forever. Peace, silence, and Radhaswami.

The donation made to the Faqir Library Charitable Trust (Regd.) Sutehri Road, Hoshiarpur is exempted Under Section 80 G. of the Income-Tax Ac 1961 as per letter of the Commissioner Income-Tax alandhar Letter No. JUDL/TRUST/13999/1400 F Dated 31-12-91 upto year ending 30-3-1994.

PHILOSOPHY IN THE CONTEMPORARY AGE OF CRISIS

By

His Holiness Manav Dayal

Dr. Ishwar Chand Sharma

My ownself in the form of the chief guest Shri Rajiv Gandhi, Chairman Dr. I. S. Murti, Ladies and Gentleman.

Has philosophy become obsolete in the age of reason, science and technology ? Is there any need of metaphysical speculation about the nature of Man, God, Soul and Matter in our times ? Have not religion and mysticism outlived in the presence of empiricism, which emphasizes positivism and analysis ? Philosophy is adopting the analytical method applied to language, with a view to bring about some revolution. Technology has benefitted mankind in various ways and made us free from many incurable diseases. The immense nuclear power is the blessing of the scientific research, which also enables man to destroy all life on earth in a few minutes

just by pushing a little button. Can philosophy match these achievements? These are some of the questions which philosophers face today. Philosopher is in the habit of raising questions and spending his life time in working out various ramifications of the answers to these questions.

Of late, philosophers in the West have particularly withdrawn their attention from concrete facts and practical problems facing the modern man, and have turned toward analysing the language used in philosophical issues, ethical problems or religious experiences. Oriental philosophers, including those of India have mostly not only followed suit, but have wrongly concluded that a philosophy other than analytical is no a philosophy at all. It may be called a history, religion or superstition, since metaphysics is a myth, religion is nothing but blind faith and ethical judgements like 'You ought not to tell a lie' etc.,are scientifically insignificant, linguistically meaningless, logically nonsensical and analytically emotive statements.

Whereas analysis of language has led to a critical approach to science, history, art, literature and even religious experiences, it would be absolutely wrong to call analytical approach and critical appreciation, as

the be all and the end all of philosophy.

The tenacious attitude of the analytical philosophers has led to a confusion about the nature of man, who is not a mere machine, but also an integrated whole of reason, emotion, will and the indestructible ground of these three characteristics of human life. Emphasis on either reason or emotion, or mere volit on, as the sole expression of man's self would be a prejudical and lopsided view. It is so because man's self is the ground of all his experiences in waking, dream and dreamless states.

Philosophy is, and should be concerned with the whole truth about the nature of man, cosmos and the ground of the objective matter and subjective mind. In my opinion Western philosophy has from the ancient times to the present day neglected the comprehensive and integrative notion of truth, whether in the area of material nature, human nature or Divine nature. By dividing the three branches of knowledge, i.e. science, religion and philosophy into watertight compartments, philosophy, particularly in the West has not only receded from truth, but has also thwarted the progress and development of the inner nature of man. This inner nature is an element, which also exists in matter in a dormant form and

which has premium over matter. Recognition of this indestructible ground of matter and mind alone can lead to the well being of humanity and also bring about a relief from the feared wholesale destruction of life on this planet, in case the thermonuclear war were to break out.

The central element in human nature has been called 'Atman' or self in Indian Philosophy. All lower animals have awareness, feeling and striving in a rudimentary form ; but these activities, without reflection, remain undeveloped in them. So animals have not invented a science, adopted a religion or propounded a philosophy. The truth is that man's reflection, being grounded on 'Atman' or self, is responsible for the experience of love and the emergence of volition, both of which involve a subtler understanding. They originate from soul or self, which is the core of man. All knowledge that carries the idea of unity and organization, all feeling that urges man to love rather than hate, and all action, which impells him to manifest goodwill, owe their function to that very source--the self. The powers of soul or self are unlimited by time and space, as demonstrated by the philosophers and sages of India from the ancient past to the present times. The Western psychoanalyst C. G. Jung has designated these powers as the un-

conscious. The word unconscious is a negative term, but it implies the positive content of that unlimited psyche of which co scious ess, is just one infinitesimal part. We justly admire consciousness, because it is through that function that we know, feel and will, but we should not forget that the psyche is wider than these manifestations of the soul--Atman.

Without the concept of universal consistent truth man becomes a fractured personality. The scientist says that the truth of the laboratory is different from that of the church. The minister of the church affirms that God is irrelevent to scientific findings and that such truth differs from that of the Bible. Strangely enough, this anamolous acceptance of the theory of double truth- spiritual and secular, existing like paral'el lines without inter-connection, is held by many Western intellectuals even today, despite the fact that the latest researches in science have confirmed the orderly force in biological evolution, mental expansion and intellectual growth in the universe.

As an example, we all know that the sun is the center of our solar system with the planets revolving around it, forming our largest known physical pattern. The smallest form atom is a perfect replica of the solar system. Both have a nucleous as the center of

gravity, with the atom's electrons moving like planets around it. The repetition of the pattern in intersteller system is the stamp of an intelligent guiding source of order and uniformity.

Similarly, research in biological sciences equally points to a harmony, where every particularized organ of the human body works for the whole, and even a minor injury to the organism recruits the process of healing in every part of the body. Henry Bergson has given countless examples from the biological world to prove that every part of the living orgnism works for the system so purposively that one is forced to believe in the existence of a creative intelligence, or even clan vital behind the evolution of life. These discoveries plus the success of science in controlling nature through knowledge of immutable laws, and all evidence testifying to the uniformity in causation, reaffirms that the originator of the dynamic, creative cosmos is not any caprice, but a purposeful and intelligent, Eternal Being.

Sophiscated scientists and historians of science state that religion begins in superstition, blind faith and mythology. They ollege that religion started with fear, with the existence of ghosts and spirits, animism and ances-

for worship. Primitive man, they say, worshipping sun and moon, serpent and lion, was ignorant of the roundness of the earth, its rotation and revolution. They proudly picture Copernicus, Galilio and Newton, redeeming man from the nonsense preached by religious dogmas. They stamp the ancient religions which date back to the centuries before Greek philosophy, as self-deception and illusion, not realizing that in fact, the scientist of today is merely corroborating truths discovered by men of religion at least four thousand years ago. In spite of the antiquity of the evidence, the truth is that the Vedas speak of the motion, the revolution, not only of the earth, but also of the sun, solar system and galactic center, and give names to the orbits of these systems.

Without taking into consideration, the comprehensive view of man as envisaged in Indian philosophy, the concept of man developed in the West, being merely external, is lopsided and prejudicial. As a result of this, man has been considered to be a means and not an end in himself by an overwhelming majority. This is event from the exploitation of man in society, religion and politics.

One of the contemporary thinkers Martin Buber has no doubt poited out that the external approach

for worship. Primitive man, they say, worshipping sun and moon, serpent and lion, was ignorant of the roundness of the earth, its rotation and revolution. They proudly picture Copernicus, Galilio and Newton, redeeming man from the nonsense preached by religious dogmas. They stamp the ancient religions which date back to the centuries before Greek philosophy, as self-deception and illusion, not realizing that in fact, the scientist of today is merely corroborating truths discovered by men of religion at least four thousand years ago. In spite of the antiquity of the evidence, the truth is that the Vedas speak of the motion, the revolution, not only of the earth, but also of the sun, solar system and galactic center, and give names to the orbits of these systems.

Without taking into consideration, the comprehensive view of man as envisaged in Indian philosophy, the concept of man developed in the West, being merely external, is lopsided and prejudicial. As a result of this, man has been considered to be a means and not an end in himself by an overwhelming majority. This is event from the exploitation of man in society, religion and politics.

One of the contemporary thinkers Martin Buber has no doubt poited out that the external approach

to man's nature has led to, what he calls the 'Thingification of man', i.e., considering man not as a subject, as an agent or as a person, but merely as a material object, as a means and not an end in himself. He has done so by referring to two types of relationship. He thinks that these two types of relationship are the only ones, which we entertain in our practical life. These two relationships according to Martin Buber are 'I—It' relationship and 'I---Thou' relationship.

According to Martin Buber 'I---It relationship makes us understand man's behaviour with nature or the outside material world. In this relationship, man is the end and the things or material objects are the means to be utilized for the benefit of man. Here, the subject or man is superior to matter. The things are always to be considered as the means only.

In the 'I--Thou' relationship man confronts man, subject stands related to subject. This is the relationship of equality. Man should consider another man not as a means, but as an end in himself. There has to be a reciprocity in this type of relationship, as opposed to subordination of nature to man in 'I--It' relationship. Here, a subject responds to another subject, not to an object or a thing. It appears that Buber like Kant, has tried to show that man is more dignified than and superior to objective nature, beca-

use he is an end in himself. Buber has perhaps restated one of the maxims of Kant, "Never use man either in your own person, or in that of others as a means, but always as an end in himself". This dignity of man or let me say, this recognition of the perfection of man, discovered long ago by Indian sages, seers and philosophers, has been reiterated in strong terms. It amounts to saying that what is wrong with the Western and even the Eastern approaches to man in practical life, is that we are treating man not as an end, but as a means and as a lifeless thing only. Wherever man is exploited theologically, economically, socially or politically, we are resorting to what Buber calls the 'thingification of man'.

Here is a call from a contemporary Western philosopher to rectify the philosophical mistake of neglecting the subjective or inner dignity of man as a conscious agent, a doer, a seer and a self. What can Indian philosophy do in bringing about the new era of humanism by supporting Buber's approach to the understanding of man so as to bring an end to this social, political, economic and religious exploitation ? Here is an opportunity for us to rectify the blunder of lopsidedness committed by Western philosophers, including Martin Buber, in their understanding of man's true and comprehensive nature. Rising to this golden opportunity alone, can save philosophers as well as the human race from extinction. This is not a rhetoric, but an assertion of the truth, which the Western philosophy has neglected to recognize for thou-

sands of years. The predicament of the possibility of peace in the midst of the threat of committing nuclear suicide on the part of man has arisen as a resu t of this neglect.

Martin Buber has no doubt pointed out the dignity of man and the need of treating man as an end, so that the social, political and economic inequalities are not allowed to mutilate the true image of man, the image of him as a subject and never as an object. The distinction between matter as an objective reality and mind as a subjective reality declares the superiority of mind over matter. It makes matter or nature as the means and mind, the person, as the end in himself. His statement that the thingification of man has given rise to human ills, including the evils in social, political and even in ethical aspects of life, is worth considering. The remedy suggested by Buber is that man should treat another man, as a person on reciprocal basis, so that there sponse is from heart to heart and from person to person and not from person to things. Buber's attempt to shift the attention of the Western philosophy from the emphasis on matter and objective reality to mind, consciousness and subjective self is laudable.

It is well known that West has adopted a dualistic approach to reality, without going behind and beyond mind and matter, consciousness and extension. Most of the Western philosophers with a few exceptions like Plotinus and Spinoza have religiously followed this dualistic technique, Descartes, the pioneer of modern philosophy and the supporter of mathemati-

cal approach far the establishment of selfevident propositions in philosophical pursuit of reality did not succeed in his mission. He miserably failed not only to go beyond the celebrated dualism and the medieval theory of double truth, but also in solving the problem of body-mind relation. In spite of Hume's skepticism, which awakened Kant from his 'Dogmatic slumber', leading to the establishment of the socalled transcendental Kantian approach followed by the conflict between idealism on the one hand and the materialism of various kinds, culminating in Marxism, on the other, the problem of mind-body relation remains unresolved for the occidental philosopher till today. Even a linguistically analytic, empirically alert and logically positivistic contemporary philosopher, when asked what is mind ? will respond, 'No matter.' Similarly, when he is questioned, What is matter ?, he will blurt out, 'Never mind'.

Buber has no doubt euloguised mind or consciousness by equating it with the subjective aspect of man or self, by declaring it superior to matter. However, his humanism (if at all the abolition of thingification can ever give rise to humanism of some sort), remains incomplete. The fact is that he stopped short of asserting reality, which is higher than mind as well as matter. That is why he could not rise to a relationship beyond the two types i.e., the 'I--It' and 'I--Thou' relationships, both of which do not get cut

of the dualistic approach to reality. In other words, Buber, like most of the Western philosophers, is redundant. He has simply restated the dualism of mind and matter by asserting 'I' and 'It'. He gives the appearance of an idealist and also a realist, even though he is neither of the two.

If we were to adopt 'I--Thou' relationship in practical life, shall we be able to resolve the conflict between mind and matter, man and the environment ? Science and technology are declaring the superiority or at least the mastery, nay, the dominion of man over nature--the so-called subjective reality. Has not the same superiority, the same attainment of control over nuclear power, led to the present world predicament ? Man is threatened by his own inventions and achievements. He might bring about his own annihilation both by trying to conquer nature as a hostile stepmother and also by thingification of man in social, political, economic and religious spheres.

PRESIDENIAL ADDRESS TO THE ALL
INDIA PHILOSOPHICAL CONGRESS
HYDERABAD DEC. 19-23 1985

(Continued)

शुभ सूचना

सभी सत्संगी जन को सूचित करते हर्ष हो रहा है कि हर साल की भांति इस वर्ष भी परम संत सद्गुरु परम दयाल पंडित फ़कीर चन्द जी महाराजाधिराज की 107वीं जन्म जयन्ती समारोह 18 नवम्बर, 1993 को मानवता मन्दिर, होशियारपुर के पवित्र प्रांगण में सम्पन्न होगा। इस शुभ अवसर पर परम पुरुष पूर्ण धनी सन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज सत्संग फरमावेंगे।

सभी सत्संगी जन को प्रेमपूर्वक आमंत्रित किया जाता है। इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होकर हजूर मानवदयाल जी महाराजाधिराज के पराआध्यात्मिक सत्संग वचनामृत से लाभ उठाकर अपना लोक-परलोक जीवन सुफल करें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मंदिर, होशियारपुर

शोक समाचार

सत्संगी जन को दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि प्रिय सत्संगी श्री गिरिजा प्रसाद दुबे की धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमावती दुबे का आकस्मिक निधन गत 15-7-93 को जमशेदपुर में हो गया। श्री दुबे का समस्त परिवार सत्संगी तथा हजूर मानव दयाल जी महाराज का प्रेमीभक्त है।

मानव मन्दिर परिवार सम्पूर्ण सम्वेदना सहित श्री दुबे जी के परिवार के दु:ख की बेला में सम्मिलित होते हुए परम पिता से सच्चे दिल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को सदगति प्रदान करें तथा शोकाकुल परिवार को सहनशक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

BOOK POST

Regd No. 26265/74 OCT 10th 1993

MANAV MANDIR PB HSP—5

Address

3049. Dr. T. Kalpana Devi,
H/E Jaya Nursing Home
Hanamkonda Chaurasta
Distt. Warangal-506001
(A.P)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD.
HOSHIARRPUR, 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao press Manavta Mandir Hoshiarpur (pb.)